

द्रव्य-सहायक

उदारहृदय धर्मप्रिय सुश्रावक श्रीमान् सेठ पीराजी
छगनलालजी सा. भाव. जिला-जालोर

-प्राप्ति स्थान-

- १ श्री अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन संस्कृति
रक्षक-संघ-सैलाना (म. प्र.)
- २ " " एदुन बिल्डिंग, पहली धोबी-तलाव लेन
बम्बई ४००००२
- ३ " " सराफा बाजार जोधपुर (राजस्थान)

मूल्य ३-००

प्रथमावृत्ति

३०००

वीर संवत् २५०६

विक्रम संवत् २०३६

नवम्बर सन् १९७९

मुद्रक-श्री जैन प्रिंटिंग प्रेस सैलाना (मध्य-प्रदेश)

निवेदन

प्रकरणों में कुल १३३४ प्रश्नों का संकलन है। जिसका मनन चिंतन और आचरण कर प्रत्येक व्यक्ति सच्ची शांति और शाश्वत सुख प्राप्त कर सकता है।

स्थानकवासी समाज के चिर परिचित सुलेखक, शास्त्र-मर्मज्ञ, तत्त्वमनीषी, आगमवेत्ता सुश्रावक श्रीमान् रतनलालजी सा. डोशी के सान्निध्य में रह कर कार्य करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। प्रस्तुत पुस्तक के संकलन से प्रकाशन तक आप मार्गदर्शक और प्रेरक बने रहे। शारीरिक स्थिति अनुकूल नहीं होने पर भी लेखन के अपने व्यस्त कार्यक्रम से अमूल्य समय निकाल कर आपने इस पुस्तक का आद्योपरांत अवलोकन किया। इस तरह लेखन का मेरा यह पहला ही प्रयास था, अतः आपने कई त्रुटियों की ओर मेरा ध्यान आकर्षित करते हुए आवश्यक संशोधन, परिवर्द्धन और परिवर्तन किया। पुस्तक के इस सुंदर रूप में प्रकाशित होने का सम्पूर्ण श्रेय परमोपकारी श्रद्धेय डोशी सा० को ही है।

आशा है तत्त्वज्ञान-रसिक धर्मप्रेमी भाई-बहिन इस पुस्तक से लाभान्वित होंगे। धार्मिक शिक्षण के क्षेत्र में भी स्वाध्यायियों और शिविरार्थी छात्र-छात्राओं के लिए यह पुस्तक प्रमाणिक, पठनीय और मननीय सिद्ध होगी।

इस पुस्तक के संकलन में जैनागम तत्त्व दीपिका, जैन तत्त्व प्रश्नोत्तर (गुजराती), जैन प्रश्नोत्तर कुसुमावली, शालोपयोगी जैन प्रश्नोत्तर, जैन शिशुबोध, सुबोध जैन पाठमाला भाग १-२, नंदी सूत्र और उववाइय सूत्र आदि पुस्तकों की सहायता ली

अपनी बात

समाज में धार्मिक-शिक्षा प्रचार के प्रयत्न हो रहे हैं। शिक्षण-शालाओं में तात्त्विक विषय पढ़ाये जाते हैं। कुछ वर्षों से शिक्षण-शिविर का आयोजन कर विद्यार्थियों को विशेष प्रशिक्षित किया जाता है। इन सब में धार्मिक साहित्य की आवश्यकता तो है ही और उसकी व्यवस्था भी होती है। अध्यापक-गण तत्त्वों का अर्थ एवं मर्म समझाते हैं। जीवादि तत्त्वों के अर्थ प्रतिपादक पुस्तकें भी विभिन्न स्थानों से प्रकाशित हुई हैं और उनमें से कई अप्राप्य हैं। इसलिये ऐसी पुस्तक की आवश्यकता थी जो तत्त्वों को विशद रूप से समझा सके।

मेरे मन में कई बार तात्त्विक प्रश्नोत्तर विशेष रूप से स्पष्टीकरण सहित लिखने का विचार उत्पन्न हुआ, मन ही मन रूपरेखा बनी और लुप्त हो गई। पहले भी कई पुस्तकों की योजना बनी और लुप्त हो गई, कुछ लिखनी प्रारम्भ की और बीच में ही छूट गई। इस बार श्री पारसमलजी का योग मिलने से इनसे यह पुस्तक लिखवाई गई। विभिन्न प्रकाशनों के प्रश्नोत्तर रूप पुस्तकों से प्रश्नोत्तर का संग्रह करवाया गया। लेखन पूर्ण होने के पश्चात् संशोधनार्थ जोधपुर भेजी गई, वहाँ पं० श्री महेशचन्द्रजी शास्त्री एवं तत्त्वानुभवी सुश्रावक श्रीमान् धीमदमलजी सा. ने संशोधन कर पाण्डुलिपि लौटा दी। तत्पश्चात् मैं देखने लगा, परन्तु इसके कई उत्तर मुझे यथार्थ नहीं लगे। मैंने उसमें इतने संशोधन किये कि पुस्तक बहुत

विषयानुक्रमणिका

विषय

१ जीवतत्त्व—

१ वैमानिक देव

२ भवनवासी देव

३ ज्योतिषी देव

४ व्यंतर देव

२ अजीव-तत्त्व—

३ पुण्य-तत्त्व—

४ पाप-तत्त्व—

५ आश्रव-तत्त्व—

६ संवर-तत्त्व—

१ सम्यक्त्व

२ परम आराध्य-देव

३ गुरु

४ धर्म

७ निर्जरा-तत्त्व—

८ बंध-तत्त्व (कर्म प्रकृति)

९ मोक्ष-तत्त्व—

१ सम्यक्ज्ञान

२ प्रमाण, नय, निक्षेप और सप्त भंगी

३ गुणस्थान स्वरूप

पृष्ठ

१-५१

३५-४१

४१-४४।

४५-४८।

४८-५२

५३-७६

७७-८२

८३-८६

८७-९७

९८-१५४

११३-१२५

१२५-१३२

१३२-१४८

१४८-१५४

१५५-१६८

१६९-२१२

२१३-२६६

२२२-२३८

२३८-२५०

२५०-२६१

३ प्र.—द्रव्य प्राण के किसे भेद हैं ?

उत्तर—२५—१. पानि उद्भिद्रव्य प्राण, २. जीव व द्रव्य प्राण
३. श्वासोच्छ्वास प्राण और ४. आयुष्य प्राण ।

४ प्र.—पानि उद्भिद्रव्य प्राण कौन २ में हैं ?

उत्तर—१. स्पर्शेन्द्रिय (दर्श) २. रसोन्द्रिय (जीभ) ३.
घ्राणेन्द्रिय (नाक) ४. तक्षारिन्द्रिय (आंशु) ५. श्रोत्रेन्द्रिय
(कान) ।

५ प्र.—तीन बल प्राण कौन २ में हैं ?

उत्तर—१. मन बलप्राण—विचार करने की शक्ति, २.
२. वचन बलप्राण—बोलने की शक्ति ३. कायबलप्राण—शरीर
की शक्ति ।

६ प्र.—श्वासोच्छ्वास बलप्राण किसे कहते हैं ?

उत्तर—हवा को शरीर में ग्रहण करने और बाहर निका-
लने की शक्ति को श्वासोच्छ्वास बलप्राण कहते हैं ।

७ प्र.—आयुष्यप्राण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसके संयोग से एक शरीर में अमुक समय तक
जीव रहता है और जिसके वियोग से उस शरीर से निकल जाय ।

८ प्र.—भावप्राण किसे कहते हैं ?

उत्तर—आत्मा के निज गुणों को भावप्राण कहते हैं । ये
चार हैं—१. ज्ञान २. दर्शन ३. सुख और ४. वीर्य (शक्ति) ।

९ प्र.—जीव के मुख्य कितने भेद हैं ?

उत्तर—जीव के मुख्य दो भेद हैं—संसारी और सिद्ध ।

१० प्र.—संसारी जीव किसे कहते हैं ?

रहित—स्थिर हो गये हैं, उन्हें मिद्ध जीव कहते हैं ।

१८ प्र.—संसार जीवों के कितने भेद है ?

उत्तर—संसार जीवों के दो भेद हैं—त्रस और स्थावर ।

१९ प्र.—त्रस-स्थावर जीवों के चौदह भेद कौनसे हैं ?

उत्तर—१ सूक्ष्म एकेन्द्रिय, २ वादर एकेन्द्रिय, ३ वेइन्द्रिय, ४ तेइन्द्रिय, ५ चउरिन्द्रिय, ६ असंजी पंचेन्द्रिय और ७ संजी पंचेन्द्रिय । इन सात के अपर्याप्त और पर्याप्त मिला कर कुल चौदह भेद हुए ।

२० प्र.—त्रस किसे कहते हैं ?

उत्तर—त्रस नाम-कर्म के उदय से जो जीव मर्द्दी-गर्मी आदि दुःखों में बचने के लिए गमनागमन कर सके, उसे त्रस जीव कहते हैं ।

२१ प्र.—स्थावर किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो जीव स्थावर नाम-कर्म के उदय से गमनागमन नहीं कर सके । जैसे एकेन्द्रिय जीव ।

२२ प्र.—एकेन्द्रिय जीव किसे कहते हैं ?

उत्तर—त्रिमके शरीर (स्पर्शन) रूप एक उन्द्रिय ही ।

२३ प्र.—सूक्ष्म एकेन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर—त्रिम एकेन्द्रिय जीवों का शरीर, शस्त्र, जल, अग्नि वायु, विष आदि से प्रभावित नहीं होता, जिन्हें सामान्य उदयमय नहीं जान सकते, सर्वज्ञ ही जानते हैं, ऐसे अत्यंत छोटे (वासीकतम) जीवों को 'सूक्ष्म एकेन्द्रिय' कहते हैं ।

२४ प्र.—वादर एकेन्द्रिय किसे कहते हैं ?

३२ प्र.—आभ्यन्तर निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय क्या है ?

उत्तर—श्रोतेन्द्रिय का आकार कदम्ब के फूल जैसा, चक्षु का आकार चंद्र मसूर की दाल जैसा, घ्राणेन्द्रिय का आकार तिल के पुष्प जैसा, रसनेन्द्रिय का आकार खुरपा जैसा और स्पर्शनेन्द्रिय का आकार नाना प्रकार का होता है । आभ्यन्तर निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय सब जीवों के समान होती है ।

३३ प्र.—श्रोतेन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर—कान, जिसके माध्यम से शब्दत्व संबंधी ज्ञान हो ।

३४ प्र.—चक्षुरिन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर—चक्षु, जिसके माध्यम से रूपत्व संबंधी ज्ञान हो ।

३५ प्र.—घ्राणेन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर—नाक, जिसके माध्यम से गंधत्व संबंधी ज्ञान हो ।

३६ प्र.—रसनेन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिव्हा— जिसके माध्यम से रसत्व संबंधी ज्ञान हो ।

३७ प्र.—स्पर्शनेन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस इन्द्रिय के माध्यम से मुख्यतया स्पर्शत्व संबंधी आठ प्रकार का यथा योग्य ज्ञान हो ।

३८ प्र.—मनो-इन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर—मन, जिससे चिन्तन-स्मरण आदि होता है ।

३९ प्र.—स्थावर के कितने भेद हैं ?

उत्तर—पाँच भेद—१ पृथ्वीकाय, २ अप्काय, ३ तेजस्काय
४ वायुकाय और ५ वनस्पतिकाय ।

४५ प्र.-तेजस्काय किसे कहते हैं ?

उत्तर-अग्नि ही जिनका शरीर हो, जैसे झाल की अग्नि विजली की अग्नि, वांस की अग्नि, काष्ठ की अग्नि, लोहे की अग्नि, ज्वाला आदि ग्रात लाख योनि है ।

४६ प्र.-तेजस्काय का विशेष स्वरूप क्या है ?

उत्तर-तेजस्काय का आयुष्य जघन्य अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट तीन रात-दिन का है । अग्नि की एक चिंगारी में असंख्याता जीव भगवान ने फरमाये हैं । तेजस्काय का वर्ण सफेद है, स्वभाव उष्ण और सठाण सुई के भार के समान है ।

४७ प्र.-वायुकाय किसे कहते हैं ?

उत्तर-हवा ही जिन जीवों का शरीर हो । जैसे उक्कलिया घणवायु, तनवायु, पूर्ववायु, पश्चिम वायु, मंडलिया वायु आदि सात लाख योनि है ।

४८ प्र.-वायुकाय का विशेष स्वरूप क्या है ?

उत्तर-वायुकाय का आयुष्य जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष का है । एक फूंक से असंख्याता वायुकाय के जीवों की घात होना भगवान ने फरमाया है । वायुकाय का वर्ण हरा, स्वभाव चलना, सठाण ध्वजा के आकार का है ।

४९ प्र.-वनस्पति काय किसे कहते हैं ?

उत्तर-वनस्पति ही जिन जीवों का शरीर हो । वनस्पति का वर्ण फाला स्वभाव व सठाण नाना प्रकार का ।

५० प्र.-वनस्पति के कितने भेद हैं ?

उत्तर-दो भेद--१ सूक्ष्म और २ वादर ।

उत्तर-दो-सूक्ष्म और वादर । वादर निगोद में साधारण वनस्पति है जैसे — आलू, रतालु, लीलन-फूलन आदि ये व्यवहार राशि में है । सूक्ष्म निगोद के दो भेद है-१ व्यवहार राशि और २ अव्यवहार राशि ।

५७ प्र.-व्यवहार राशि किसे कहते हैं ?

उत्तर-जिसने एक बार भी अनादि निगोद को छोड़ कर पृथ्वीकायादि एवं व्रम आदि गति पाई हो ।

५८ प्र.-अव्यवहार राशि किसे कहते हैं ?

उत्तर-जो जीव अनंतकाल में निगोद में ही पड़े हों, जिन्होंने कभी निगोद को नहीं छोड़ा हो, उन्हें 'अव्यवहार राशि' कहते हैं ।

५९ प्र.-प्रत्येक वनस्पति किसे कहते हैं ?

उत्तर-जिसके एक शरीर में एक ही जीव हो जैसे—फल-कृत्, आम अंगूर, केला, बड़, पीपल, पत्ते, शाक धान्य आदि इस वर्ग में हैं । प्रत्येक वनस्पति का आयुष्य जघन्य अंत-मूर्धन और दृष्टात् १० हजार वर्ष का है ।

६० प्र.-वादर और सूक्ष्म कौन २ जीव है ?

उत्तर-पर्वी, अणु, नेत्र, वायु और निगोद के जीव सूक्ष्म और वादर दोनों प्रकार के होते हैं, अन्य सब जीव वादर ही होते हैं ।

६१ प्र.-सृष्टि के अग्रभाग पर आ जाये अपने निगोद में निरन्तर रहते हैं ।

उत्तर-सृष्टि के अग्रभाग पर आ जाये अपने निगोद में अग्र-भाग में ही रहते हैं । सूक्ष्म प्रकार में अग्रभाग श्रेष्ठता है एक-एक

उत्तर—जिनके दीर्घकालीन मंजा हो अर्थात् मन पर्याप्ति हो, उन्हें संजी कहते हैं ।

७० प्र.—असंजी किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिन जीवों के मन नहीं होता है, उन्हें असंजी कहते हैं।

७१ प्र.—संजी-असंजी जीव कहाँ-कहाँ है ?

उत्तर—मात्र पंचेन्द्रिय में संजी (मन सहित) और असंजी (मन-रहित) दोनों प्रकार के जीव हैं। शेष सभी जीव असंजी-मन-रहित ही हैं ।

७२ प्र.—पर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर—आहार के पुद्गलों को शरीर, इन्द्रिय और द्वासो-च्छ्वास रूप परिणमावे, भाषा-वर्गणा के पुद्गलों को वचन रूप में परिणमावे और मन-वर्गणा के पुद्गलों को द्रव्य मन, रूप परिणमावे, उस जीव की क्षिति की पूर्णता को 'पर्याप्ति' कहते हैं (वर्गणा यानी पुद्गलों का समूह)।

७३ प्र.—किन जीवों में कितनी पर्याप्ति होती है ?

उत्तर—एकेन्द्रिय जीवों में आहार, शरीर, इन्द्रिय और द्वासोच्छ्वास, ये चार पर्याप्तियें होती है । वेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय चउरिन्द्रिय, और असंजी पंचेन्द्रिय में मन के अलावा पाँच पर्याप्तियाँ होती है, संजी पंचेन्द्रिय में छहों पर्याप्तियाँ होती हैं ।

७४ प्र.—छह पर्याप्ति कौन २ सी है ?

उत्तर—१ आहार पर्याप्ति, २ शरीर पर्याप्ति, ३ इन्द्रिय पर्याप्ति, ४ द्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, ५ भाषा पर्याप्ति और ६

उत्तर—मनः योग्य पुद्गलों को ग्रहण कर उन्हें मन रूप में परिणित कर के छोड़ा जाता है । उस शक्ति की पूर्णता को मनःपर्याप्ति कहते हैं ।

८१ प्र.—अपर्याप्त किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिन जीवों में जितनी पर्याप्ति होती है उतनी पूर्ण नहीं हुई हो, उनको 'अपर्याप्त जीव' कहते हैं । अपर्याप्त अवस्था में जीव दो घड़ी से अधिक नहीं रहता है । जन्मांध या पागल मनुष्य अपर्याप्त नहीं कहा जाता, परन्तु 'दूषित पर्याप्ति' बाल कहा जाता है ।

८२ प्र.—पर्याप्त किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो जीव अपनी पर्याप्ति पूर्ण कर चुका हो, उसे पर्याप्त जीव कहते हैं ।

८३ प्र.—नारकी किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसे नरक नामकर्म का उदय हो । जो जीव अत्यंत पापकर्म करते हैं । वे मर कर नरक में जाते हैं । नरक सात हैं ।

८४ प्र.—सात नारकियों के नाम क्या हैं ।

उत्तर—१ घम्मा, २ वंशा, ३ शिला, ४ अंजना, ५ रिद्धा, ६ मघा, ७ माघवती ।

८५ प्र.—सात नारकी के गोत्र कौन २ से हैं ?

उत्तर—१ रत्नप्रभा, २ शंकराप्रभा, ३ बालुकाप्रभा, ४ पंकप्रभा, ५ धूमप्रभा, ६ तमःप्रभा, ७ तमतमःप्रभा ।

८६ प्र.—तिर्यञ्च किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस के तिर्यच गति नामकर्म का उदय हो । जो जीव

१० प्र.—मनुष्य के कितने भेद हैं ?

उत्तर—३०३ भेद हैं—१५ कर्मभूमि, ३० अकर्मभूमि और ५६ अंतरद्वीप। ये तीनों मिल कर १०१, संज्ञी मनुष्य के अपर्याप्त और पर्याप्त के भेद में २०२। इन २०२ की विष्ठादि अशुचि में उत्पन्न १०१ अपर्याप्त समूच्छिम असंज्ञी मनुष्य। ये सब मिलाकर ३०३ भेद हुए।

११ प्र.—अंतरद्वीप कितने और कहां है ?

उत्तर—अंतरद्वीप ५६ हैं। भरत क्षेत्र और एरावत क्षेत्र की मर्यादा करने वाले चूलहिमवत पर्वत व शिखरी पर्वत के पूर्व-पश्चिम लवण-समुद्र में डाढ़ा आकार ८ अंश हैं। एक-एक करफ ७-७ अन्तर्द्वीप हैं।

१२ प्र.—कर्मभूमि किसे कहते हैं ?

उत्तर—जहां अग्नि, मणि, कृषि, वाणिज्य और शिल्पकला की प्रवृत्ति होती है। इसके १५ भेद हैं

१३ प्र.—कर्मभूमि के पन्द्रह भेद कौन २ में हैं ?

उत्तर—पांच भरत, पांच एरावत, और पांच महाविदेह—कुल १५ कर्म-भूमियां हैं। इनमें तीर्थकर, चक्रवर्ती, माधु-माध्वी आदि होते हैं।

१४ प्र.—अकर्म-भूमि किसे कहते हैं ?

उत्तर—जहां अग्नि मणि आदि की प्रवृत्ति नहीं होती है और वाण्युत्पत्ति के ही शिल्पि होते हैं। जहां तीर्थकर आदि उत्पन्न नहीं होते।

खरस्वर और १५ महाघोष ।

१०२ प्र.—वाणव्यंतर देव के कितने भेद हैं ?

उत्तर—छव्वीस—१ पिशाच, २ भूत, ३ यक्ष, ४ राक्षस, ५ किन्नर, ६ किपुरुष, ७ महोरग, ८ गंधर्व, ९ आणपण्णे, १० पाणपण्णे, ११ इसिवाई, १२ भूयवाई, १३ कंदे, १४ महाकंदे, १५ कूष्माण्ड, १६ पर्यंगदेव (प्रेत देव) । दस त्रिजृम्भक देवों के नाम—१ अन्नजृम्भक २ पान जृम्भक, ३ लयन जृम्भक, ४ शयन जृम्भक, ५ वस्त्र जृम्भक, ६ फल जृम्भक, ७ पुष्प जृम्भक ८ फल पुष्प जृम्भक, ९ विद्या जृम्भक, १० अग्नि जृम्भक ।

१०३ प्र.—ये जृम्भक क्यों कहलाते हैं ?

उत्तर—क्यों कि ये सदा क्रीड़ा में लीन रहते हैं ।

१०४ प्र.—ज्योतिषी देवों के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दस भेद हैं—१ चन्द्र २ सूर्य ३ ग्रह ४ नक्षत्र और ५ तारा ये पाँचों चर (चलने वाले) और पाँचों मनुष्य क्षेत्र के बाहर अचर (स्थिर रहने वाले) कुल दस भेद ।

१०५ प्र.—वैमानिक देव के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद—१ कल्पोपपन्न और २ कल्पातीत ।

१०६ प्र.—कल्पोपपन्न किसे कहते हैं ?

उत्तर—जहाँ इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश आदि छोटे-बड़े का भेद है ।

१०७ प्र.—कल्पातीत किसे कहते हैं ?

उत्तर—अहमिन्द्रों को अर्थात् जिनमें छोटे-बड़े का भेद न हों ।

१०८ प्र.—कल्पोपपन्न के कितने भेद हैं ?

हुआ तो संसार में मात्र अभव्य जीव ही रह जायेंगे ?

उत्तर-नहीं, ऐसा कभी नहीं होगा । राजा होने की योग्यता वाले सभी राजा ही जाएँ ऐसा नियम नहीं है ।

१४५ प्र.-कोई उदाहरण देकर समझाइये ?

उत्तर-जैसे मिट्टी और रेत में स्वभाव से ही भेद है कि मिट्टी से घड़ा बन सकता है, किंतु रेत से नहीं बन सकता । इसी प्रकार भवी व अभवी में स्वभाव से ही भेद है कि भव्य जीव कर्म से मुक्त हो सकते हैं, अभव्य जीव नहीं । संसार की सभी मिट्टी से घड़ा बन सकता है, परन्तु जिस मिट्टी को कुम्हार चाक आदि का योग मिल जाता है, वही मिट्टी घड़ा रूप हो सकती है । इसी प्रकार जिन भव्य जीवों को सुदेव, सुगुरु व गुरुधर्म का योग मिल जाता है, वे जीव सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यग्चारित्र्य से कर्म-बंधन को तोड़ कर मुक्त हो सकते हैं, सभी नहीं ।

१४६ प्र.-लोक में भव्य जीव अधिक हैं या अभव्य ?

उत्तर-अभव्य जीव से भव्य जीव अनंत गुण अधिक हैं ।

१४७ प्र.-अभव्य जीव क्या जैन धर्म प्राप्त करते हैं ?

उत्तर-बड़े अभव्य जीव भी श्रावक और साधुजी के व्रत धारण करते हैं, कुछ सिद्धांत पढ़ते हैं, तथा अनेक प्रकार की विद्याएँ भी करते हैं, परन्तु उनको सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन व सम्यग्-चारित्र्य की प्राप्ति नहीं होती । ज्ञानी की दृष्टि में वे अज्ञानी अविद्यमान ही हैं और उनका चात्रिय गुण बंध का कारण है ।

१४८ प्र.-वे धर्म का स्वीकार करते हैं, तो क्या उनका फल

उत्तर-नहीं, वे इनके गुण हैं कि नर्म-नक्षुओं में नहीं देखे जाते ।

१५४ प्र.-मिट्टी तथा पानी के योग से कौनसे जीव उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर-मिट्टी तथा पानी के योग से वनस्पति के तथा वेङ्ग-न्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीव उत्पन्न होते हैं । परन्तु वे समू-च्छिम गिने जाते हैं ।

१५५ प्र.-सब जीव मूल स्वरूप में समान हैं, या छोटे-बड़े ?

उत्तर-मूल स्वरूप में तो सभी जीव समान हैं, परन्तु कर्म-रूपी उपाधि से बड़े-छोटे गिने जाते हैं ।

१५६ प्र.-जीव का कोई घात करना चाहे, तो हो सकता है या नहीं ?

उत्तर-नहीं, जीव अमर है जीव कभी नहीं मरता ।

१५७ प्र.-जीव नहीं मरता तो पाप कैसे लगता है ?

उत्तर-जीव के अत्यंत प्रिय प्राणों को नष्ट कर दुःख उत्पन्न करने से पाप लगता है ।

१५८ प्र.-सब जीव समान हैं, फिर एकेन्द्रिय को मारने से कम और मनुष्य को मारने से अधिक पाप क्यों लगता है ?

उत्तर-जीवों के प्राणादि शक्तियों के विकास में तारतम्य होने से पाप में अंतर होता है । मारने वाले का अज्ञान और कर्पायिक भाव पाप के बंध में मुख्य है । उस प्राणियों के घात में भावों की मलिनता प्रायः अधिक होती है ।

उत्तर—जीवों के उत्पन्न होने के भिन्न २ स्थानों को 'जीव-योनि' कहते हैं ।

१६४ प्र.—जीवों के उत्पन्न होने की 'जीव-योनि' कितनी ?

उत्तर—जीव-योनि चौरासी लाख है—७ लाख पृथ्वीकाय, ७ लाख अप्काय, ७ लाख तेडकाय, ७ लाख वायुकाय, १० लाख प्रत्येक वनस्पति काय, चौदह लाख साधारण वनस्पति काय, २ लाख वेइन्द्रिय, २ लाख तेइन्द्रिय, २ लाख चउरेन्द्रिय ४ लाख देवता, ४ लाख नारकी, ४ लाख तिर्यच पंचेन्द्रिय, और १४ लाख मनुष्य ।

$7+7+7+7+10+14+2+2+2+4+4+4+14 = 68$ लाख

१६५ प्र.—जीव के और भी कोई नाम है क्या ?

उत्तर—प्राण, भूत, सत्व, आत्मा, प्रभृति, आदि अनेक नामों से भी पहिचाना जाता है ।

१६६ प्र.—जीव की मुक्ति कौनसे भव में होती है ?

उत्तर—मनुष्य-भव में ।

१६७ प्र.—जीव नहीं मरता, तो मृत्यु होने पर कहाँ जाता होगा ?

उत्तर—जीवन में जैसे शुभाशुभ आचरण करके जिस प्रकार शुभाशुभ कर्म का संचय करता है, वैसे ही स्थान में जाकर उत्पन्न होता है ।

१६८ प्र.—एक जीव के प्रदेश कितने हैं ?

उत्तर—लोकाकाश समान असंख्यात ।

१६९ प्र.—वे प्रदेश पृथक् २ होते हैं या नहीं ?

उत्तर-निगमन की प्रकृति जो भी नीच है, तब का शरीर जो भी नीच होगा, तब का शरीर ही नीच होगा। शरीर नामकर्म से उत्पन्न हो सकता है। जो जो निगमन के उचित पुत्रों के माता-पिता को भोगता है, उसे शरीर कहते हैं।

१७६ प्र.-शरीर किसे प्रकृत कहें ?

उत्तर-पाँच १. औदार्यक शरीर, २. वैक्रिय शरीर, ३. आहारक शरीर, ४. वैजम् शरीर और ५. कर्मण शरीर।

१७७ प्र.-औदार्यक शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर-१. दुर्गन्धमय तथा सड़ने वाले रक्त, मांस, हड्डी आदि में बना शरीर, २. सर्वश्रेष्ठ गार पुद्गलों में बना शरीर; जैसे तीर्थकरों, गणधरों का शरीर, ३. वैक्रिय और आहारक की अपेक्षा अमर पुद्गलों में बना शरीर, जैसे सामान्य विर्यन मनुष्यों का शरीर, ४. अवस्थित रूप से सबसे बड़ी अवगाहना (कद, लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई) वाला उदार (मोटा) शरीर, जैसे वनस्पति का शरीर, ५. प्रदेश अल्प किन्तु अवगाहना बड़ी ऐसा शरीर जैसे भिण्डी का शरीर।

१७८ प्र.-वैक्रिय शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर-१. सुरूप-कुरूप, एक-अनेक, छोटा-बड़ा, हलका भारी, दृश्य-अदृश्य आदि अनेक रूपों में परिणत होने वाला शरीर, २. दुर्गन्धमय तथा सड़ने वाले रक्त, मांस, हड्डी आदि से रहित शरीर को वैक्रिय शरीर कहते हैं।

१७९ प्र.-आहारक शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर-अन्यत्र विराजमान केवली भगवान की सेवा में

उत्तर- जब तक जीव कर्म से विमुक्त न हो, तब तक परतंत्र है और विमुक्त हो जाने पर जीव स्वतंत्र है ।

१८६ प्र.- एक जीव के पास कर्म रूपी कितने परमाणु पुद्गल होते हैं ?

उत्तर- अनंतानन्त ।

१८७ प्र.- जिन समय कर्म बंधे या छूटे तब तक एक समय में कितने परमाणु पुद्गल होते हैं ?

उत्तर- अनंत ।

१८८ प्र.- जीव जब स्थूल शरीर से निकल कर दूसरी गति में जाता है, तब उसकी गति टेढ़ी रहती है या सीधी ?

उत्तर- सीधी और टेढ़ी-दोनों प्रकार की ।

१८९ प्र.- किसी जीव को मजबूत काँच या लोहे की कोठी में बंद करदे, तो भी जीव निकल सकेगा ?

उत्तर- हाँ, स्थूल शरीर को छोड़ कर उसका निकलन सर्वथा सरल है ।

१९० प्र.- दो सूक्ष्म शरीर और कर्म का बड़ा भारी समूह जीव के साथ होते हुए भी बंद कोठी में से जीव कैसे निकल सकता है ?

उत्तर- जीव के कर्म और दो शरीर इतने सूक्ष्म होते हैं कि जिनो भी ठोस और तरल पदार्थ में से निकल सकते हैं । अग्नि वादर होने हुए भी लोहे में प्रवेश कर जाती है । ये तो अग्नि से बहुत सूक्ष्म है । वरन् जैसी दृढ़तम कोठी में रहे हुए छिद्र अपने

उत्तर—यहाँ से १३ डेढ़ रज्जू यानी असंख्यात योजन ऊँचे जाने के बाद पहला व दूसरा देवलोक आता है। दोनों मिल कर चन्द्रमा के समान गोल है, जिनमें दक्षिण ओर का आधा भाग पहला 'सौधर्म' देवलोक व उत्तर की ओर का दूसरा आधाभाग 'ईशान' देवलोक है, जो पहले से हथेली के तर्जनी की तरह ऊँचा है। वहाँ से असंख्यात योजन (ठाई रज्जू) ऊँची नीमरा और चौथा दो देवलोक चन्द्रमा जैसे गोल आकार में है जिनमें दक्षिण दिशा का भाग 'मन्तकुमार' देवलोक है और उत्तर दिशा का भाग 'माहेन्द्र' देवलोक है। वहाँ से असंख्यात योजन (११ रज्जू) ऊपर पाँचवाँ ब्रह्म देवलोक है। वह परिपूर्ण चन्द्र आकार में है। वहाँ से असंख्यात योजन (३३ रज्जू) पर छठा 'लान्तक' देवलोक है, वह भी चन्द्रमा जैसा गोल है। वहाँ से असंख्यात योजन ऊँचे (३३ रज्जू पर) सातवाँ 'महाशुक' देवलोक है, वह भी पूर्ण गोल है। वहाँ से असंख्य योजन ऊँचे (४ रज्जू पर) आठवाँ 'सहस्रार' देवलोक है। वह भी पूर्ण गोल है। वहाँ से असंख्यात योजन ऊँचे (१३ रज्जू पर) नववाँ 'आणत व दनवा' 'प्राणत' ये दो देवलोक साथ-साथ ही हैं, दोनों मिल कर चन्द्रमा जैसे गोल हैं, दक्षिण दिशा में नवमा व उत्तर दिशा में दसवाँ देवलोक है। वहाँ से असंख्य योजन ऊँचे (पाँच रज्जू पर) ग्यारहवाँ 'आरण' व बारहवाँ 'अच्युत' देवलोक है। दोनों मिल कर चन्द्रमा जैसे गोल है। दक्षिण की ओर आरण व उत्तर में अच्युत है।

१८७ प्र.—देवलोक कितने बड़े हैं ?

देवलोक आते हैं ?

उत्तर—दूसरा, चौथा, पांचवां, छठा, सातवां, आठवां, दसवां व बारहवां। इस प्रकार आठ देवलोक सीधे में आते हैं।

२०२ प्र.—वैमानिक देवों में आयु ऋद्धि-सिद्धि व मृत्यु समान होते हैं, या न्यूनाधिक ?

उत्तर—समान नहीं, न्यूनाधिक है। सबसे कम आयु ऋद्धि वगैरा पहले देवलोक में, इससे ज्यादा दूसरे में व इससे अधिक तीसरे में। इस तरह से उत्तरोत्तर बढ़ते हुए बारहवां देवलोक में सबसे ज्यादा आयु है।

२०३ प्र.—तीन किल्बिषिक देव कौन २ से हैं ?

उत्तर—१ जिन किल्बिषिक देवों की स्थिति तीन पल्योपम की है, वे 'त्रिपल्योपमिक' (तीन पलिया) कहलाते हैं। २ जिनकी स्थिति तीन सागरोपम की होती है, वे 'त्रिसागरिक' (तीन सागरिया) कहलाते हैं और ३ जिन किल्बिषिक देवों की स्थिति तेरह सागरोपम की है, वे 'त्रयोदश सागरिक' (तेरा सागरिया) कहलाते हैं।

२०४ प्र.—तीन किल्बिषी देव कहाँ रहते हैं ?

उत्तर—तीन पलिया देवों के विमान ज्योतिषी देवों के ऊपर और पहले (सीधे में) व दूसरे (ईशान) देवलोक के नीचे के प्रतर भाग में है। २ तीन सागरिया किल्बिषिक देव दूसरे देवलोक से ऊपर, तीसरे और चौथे देवलोक के नीचे के प्रतर भाग में रहते हैं। ३ तेरह सागरिया देवों के विमान छठे देवलोक के नजदीक नीचे के भाग में है।

पति देव रहते हैं, तिरछे लोक में वाणव्यंतर और ज्योतिषी और ऊर्ध्वलोक में वैमानिक देव रहते हैं ।

२२० प्र.—भवनपति देव अधोलोक में कहाँ रहते हैं ?

उत्तर—पहली रत्नप्रभा नामक नरक में १३ पाथड़े व १० आंतरे हैं । इन बारह आंतरो में से पहला व दूसरा दस प्रकार दो आंतरे खाली है । शेष १० आंतरो में दस जाति न भवनपति देव पृथक् २ रहते हैं ।

२२१ प्र.—भवनपति देव और पहली नरक के नारकी क्या साथ ही रहते हैं ?

उत्तर—नहीं, भवनपति देव ती पाथड़ों के ऊपर के भाग में पोलार में (जिनको भवन कहते हैं) रहते हैं तथा नारकी न जीव पाथड़ों के मध्य की पोलार में रहते हैं ।

२२२ प्र.—प्रत्येक पाथड़े की लम्बाई-चौड़ाई व मोटाई कितनी होगी और उसका आकार कैसा होगा ?

उत्तर—लम्बाई और चौड़ाई अमरवाक मोजन की तथा मोटाई ३००० मोजन की है । उसका आकार धनु के पाथड़े के समान है ।

२२३ प्र.—पाथड़ों के जीव व जीव तिरछे हैं ?

२३१ प्र.—परमाधामिक देवों के क्या २ कार्य हैं ?

उत्तर—१ अम्ब—असुर जाति के देव नारक जीवों को ऊंचा आकाश में ले जाकर एकदम नीचे गिरा देते हैं। २ अम्बरीष—नारकी जीवों के छुरी आदि से छोटे-छोटे टुकड़े करके भाड़ में पकने योग्य बनाते हैं। ३ श्याम—रस्सी या लात धूसे आदि से नारक जीवों को पीटते हैं और भयंकर म्यानों में डाल देते हैं। ४ शवल—शरीर की आंते नसें और कलेजे आदि को बाहर खींच लेते हैं। ५ रीद्र—भाला में और षक्ति आदि शस्त्रों में नारकी जीवों को पिरो देते हैं। ६ महारीद्र—नारकी जीवों के अंगोपांगों को फोड़ डालते हैं। ७ काल—नारक जीवों को कड़ाई आदि में पकाते हैं। ८ महाकाल—नारक जीवों के मांस के टुकड़े-टुकड़े करते हैं और उन्हें खिलाते हैं। ९ असिपत्र—वैक्रिय शक्ति द्वारा असि (तलवार) के आकार वाले पत्तों से युक्त वन की विक्रिया करके उसमें बैठे हुए नारकी जीवों के ऊपर तलवार सरीखे पत्ते गिरा कर तिल-तिल जितने छोटे-छोटे टुकड़े कर डालते हैं। १० धनुष—विक्रिया निर्मित धनुष से बाण छोड़ कर नारकी जीवों के कान आदि काट डालते हैं। ११ कुम्भ—तलवार द्वारा काटे हुए नारकी जीवों को कुम्भियों में पकाते हैं। १२ बालूक—वैक्रिय शक्ति के द्वारा बनाई हुई कदम्ब मूल के आकार वाली अथवा वज्र सरीखी बालू-रेत में नारकी जीवों को चनों की तरह धूँते हैं। १३ वंतरणी—वैक्रिय

उत्तर-सूर्य के विमान से ।

२३९ प्र.-सूर्य में रहने वाले देवों को कैसे देव कहते हैं ?

उत्तर-ज्योतिषी ।

२४० प्र.-ज्योतिषी देव कितने प्रकार के हैं ?

उत्तर-पाँच— १ चन्द्र, २ सूर्य, ३ ग्रह, ४ नक्षत्र और ५ तारा ।

२४१ प्र.-कुल देव कितने हैं ?

उत्तर-असंख्यान ।

२४२ प्र.-ज्योतिषी में देवों की संख्या अधिक है या देवी की ?

उत्तर-देवियों की संख्या अधिक है ।

२४३ प्र.-जीव के ५६३ भेदों में से ज्योतिषी देवों के कितने भेद हैं ?

उत्तर-चौंस—चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा । ये पाँच चर और पाँच अचर मिलकर दस भेद हुए । उन दस के अप-संख्य और पर्याप्त, कुल २० भेद ।

२४४ प्र.-ये सब किस लोक में हैं ?

उत्तर-दिव्य लोक में ।

२४५ प्र.-जिन विमानों को हम देवताएँ हैं, वे सब चर हैं या अचर ?

उत्तर-आठ सौ अस्सी (८८०) योजन ।

२५४ प्र.-नक्षत्र मण्डल कितने ऊँचे हैं ?

उत्तर-आठ सौ चौरासी (८८४) योजन ।

२५५ प्र.-बुध कितनी ऊँचाई पर है ?

उत्तर-आठ सौ अठासी (८८८) योजन ।

२५६ प्र.-शुक्र कितना ऊपर है ?

उत्तर-आठ सौ इक्यानवे (८९१) योजन ।

२५७ प्र.-बृहस्पति कितना ऊपर है ?

उत्तर-आठ सौ चौरानवे (८९४) योजन ।

२५८ प्र.-मंगल कितना ऊपर है ?

उत्तर-आठ सौ सत्तानवे (८९७) योजन ।

२५९ प्र.-शनिश्चर कितना ऊपर है ?

उत्तर-नौ सौ (९००) योजन ।

२६० प्र.-गव ज्योतिषी मिला कर ऊँचाई क्षेत्र में है ?

उत्तर-तिरछा लोक में मेरु पर्यन्त के समभूमि क्षेत्र योजन में २०० योजन तक यानी ११० योजन की ज्योतिषी देवी के विमान है। तिरछा क्षेत्र तो अगम्य है।

तिरछा लोक में व्यन्तर दे

२६१ प्र.-तिरछा लोक का आकार कैसा है ?

उत्तर-लोक चतुर्गोण के पाद त्रैमा ।

२६२ प्र.-तिरछा लोक की लम्बाई कितनी है ?

देवों के नगर नहीं होते हैं ।

२६७ प्र.—वाणव्यंतर देवों के कुल कितने भेद हैं ?

उत्तर—सौलह—(पिशाचादि आठ व्यंतर और आणव्यण आदि आठ गन्धर्व)

२६८ प्र.—इन देवों को वाणव्यंतर क्यों कहते हैं ?

उत्तर—ये देवता तिरछा लोक में रहते हैं और उनका स्थान, गिरि, गुफा, वृक्ष, श्मशान या उजाड़ भूमि में है । ये कुतूहल-प्रिय रहते हुए वन में रहना पसंद करते हैं, इसलिये वाणव्यंतर कहलाते हैं । विविध अंतरों में रहने के कारण इन्हें 'व्यंतर' कहते हैं ।

२६९ प्र.—त्रिजृम्भक देव कितने प्रकार के हैं ?

उत्तर—दस—१ अन्नजृम्भक—भोजन के परिमाण को बढ़ाना, बढ़ाना, सरस करना, नीरस करना आदि शक्ति रखने वाले ।

२ पाण जृम्भक—पानी को घटाने या बढ़ाने वाले देव ।

३ वस्त्र जृम्भक—वस्त्र को घटाने-बढ़ाने की शक्ति वाले ।

४ लयण जृम्भक—घर आदि की रक्षा करने वाले ।

५ शयन जृम्भक—शय्या आदि की रक्षा करने वाले ।

६ पुष्प जृम्भक—फूलों की रक्षा करने वाले ।

७ फल जृम्भक—फलों की रक्षा करने वाले ।

८ फल-पुष्प जृम्भक—फूलों और फलों की रक्षा करने वाले ।

९ विद्या जृम्भक—विद्याओं की रक्षा करने वाले देव ।

१० अग्नि जृम्भक—सामान्य रूप से सभी पदार्थों की

इन २६ के अपर्याप्त और पर्याप्त)

२७८ प्र.—वाणव्यंतर देवों में इन्द्र कितने हैं ?

उत्तर—बत्तीस (हर जाति के उत्तर व दक्षिण के दो-दो इन्द्र होते हैं) ।

२७९ प्र.—इन्द्र किसे कहते हैं, और ये कुल कितने होते हैं ?

उत्तर—देवों के अधिपति को 'इन्द्र' कहते हैं और वे कुल ६४ ऋषि हैं ।

† ज्योतिषी में असंख्यात इन्द्र हैं, किन्तु यहाँ समुच्चय दो इन्द्र माने गये हैं ।



उत्तर—जो जीव और पुद्गलों को अवकाश (स्थान) वह आकाशास्तिकाय है। जैसे—दूध में चीनी का दूध आकाश में विकाश—जैसे भीत खूँटी को स्थान देती है।

८ प्र.—लोक किसे कहते हैं ?

उत्तर—'लोक्यते इति लोकः' अर्थात् जिसमें धर्मास्ति अधर्मास्तिकाय, जीव आदि द्रव्य हों, वह 'लोक' कहलाता

९ प्र.—अलोक किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसमें आकाश के अतिरिक्त किसी द्रव्य का अस्तित्व न पाया जाय।

१० प्र.—लोक के कितने भेद हैं ?

उत्तर—लोक के तीन विभाग हैं—१ अधोलोक, २ मध्यलोक और ३ उर्ध्वलोक।

११ प्र.—लोक का आकार कैसा है ?

उत्तर—पाँच फीला कर और कमर पर हाथ रख कर घुंघरू के आकार जैसा। भगवती सूत्र में कहा है कि जैसा कमीन पर एक शकोरा उलटा रख कर उसके ऊपर दूसरा शकोरा सीधा रख दिया जाय और उस पर तीसरा शकोरा फिर उलटा रख दिया जाय तो जैसा आकार बनता है, वैसा ही आकाश का है।

१२ प्र.—लोक किसका बड़ा है ?

उत्तर—दोनों का ही बराबर है। उत्तर और दक्षिण में उत्तर और दक्षिण में भी दो-दो भाग में

१३ प्र.—राजू का परिमाण क्या है ?

उत्तर—एक हजार भार का गोला ऊर्ध्वलोक से इन्द्र या कोई देव जोर से नीचे फेंके, वह छह महिने, छह दिन, छह प्रहर छह घड़ी, छह पल में जितनी दूर जावे, उसको एक राजू क्षेत्र कहते हैं ।

१४ प्र.—भार का परिमाण क्या है ?

उत्तर—३, ८१, १२, ९७० तीन करोड़ इक्यासी लाख बारह हजार नी सौ सत्तर मन का एक 'भार' होता है ।

१५ प्र.—नीचा लोक कहाँ से शुरू होता है ?

उत्तर—मेरु पर्वत के पास की समभूमि से २०० योजन नीचे से अधोलोक शुरू होता है ।

१६ प्र.—ऊँचा लोक कहाँ से प्रारम्भ होता है ?

उत्तर—मेरु पर्वत के पास की समतलभूमि से नी सौ योजन ऊँचे से ही ऊँचा लोक प्रारम्भ होता है ।

१७ प्र.—मध्यलोक (विश्वलोक) क्या है ?

उत्तर—उर्ध्वलोक से नीचे और अधोलोक से ऊपर १८०० (अठारह सौ) योजन की मोटाई वाला ? राजू अम्बा-वीड़ा विश्वलोक है ।

१८ प्र.—नीचे लोक में कौन रहते हैं ?

उत्तर—सर्वरक्षी देवता और नारदी ।

१९ प्र.—उर्ध्वलोक में कौन रहता है ?

उत्तर—सर्वरक्षी देव ।

समुद्र हैं और अंत में स्वयंभूरमण समुद्र है। (मेरु पर्वत के सिवाय जितने शाश्वत पर्वत हैं, वे पृथ्वी में एक हिस्सा होते हैं और ऊपर चार हिस्सा। इस हिस्से से मानुषोत्तम पर्वत भूमि में ४३०। योजन होना चाहिए)।

२७ प्र.—ऊर्ध्वलोक में सब से ऊपर (लोक का जहाँ अन्त होता है) क्या है ?

उत्तर—ऊर्ध्वलोक में सबसे ऊपर सिद्ध भगवान हैं। सिद्ध गिला से ऊपर ४ कोन लोक हैं। अंतिम कोम के ऊपर के छ भाग में सिद्ध भगवान हैं।

२८ प्र.—पुद्गलाग्निकाय का क्या अर्थ ?

उत्तर—गड़ने, गलने, मिलने, भिन्न होने के स्वभाव वाले अजीव पदार्थ हैं जो पुद्गल और पुद्गलों का समूह है, वह पुद्गल नाग्निकाय। वह वर्ण, गंध, रंग और स्पर्श युक्त है। बाद का दृष्टान्त—बादल के गगन मिलने और विगर्तते हैं।

२९ प्र.—पुद्गल के मुख्य भेद कितने हैं ?

उत्तर—चार—१ मरुध, २ देश, ३ प्रदेश और ४ परमाणु

३० प्र.—मरुध किसे कहते हैं ?

उत्तर—परमाणुओं के समूह को मरुध कहते हैं अथवा अनेक प्रदेश वाले एक पूरे द्रव्य को 'मरुध' कहते हैं। जैसे—
जो मरुधों (द्रव्यों) से बना हुआ जो विश्व का एक पूरा लक्ष

३१ प्र.—मरुध देश क्या है ?

उत्तर—जो प्रदेश वाले एक द्रव्य के मरुध में रहे हूँ

सोलह (१, ६७, ७७, २१६) आवलिका का एक मुहूर्त (दो घड़ी = ४८ मिनट) होता है ।

४७ प्र.-पक्ष किसे कहते हैं ?

उत्तर-पन्द्रह दिनों का एक पक्ष होता है ।

४८ प्र.-मास किसे कहते हैं ?

उत्तर-दो पक्ष का एक मास होता है ।

४९ प्र.-कितने मास की एक ऋतु होती है ?

उत्तर-दो मास की एक ऋतु होती है ।

५० प्र.-एक वर्ष की कितनी ऋतु होती है ?

उत्तर-छह--१ हेमंत, २ शिशिर, ३ वसंत, ४ ग्रीष्म, ५ वर्षा, और ६ शरद ।

५१ प्र.-अयन किसे कहते हैं ?

उत्तर-अयन अर्थात् सूर्य का उत्तर या दक्षिण जाना ।

५२ प्र.-एक अयन कितनी ऋतु का होता है ?

उत्तर-तीन ऋतु का एक अयन और दो अयन का एक वर्ष होता है ।

५३ प्र.-एक वर्ष कितने मास का होता है ?

उत्तर-बारह मास का एक वर्ष होता है ।

५४ प्र.-युग कितने वर्षों का होता है ?

उत्तर-पाँच वर्षों का एक युग होता है ।

५५ प्र.-पल्योपम किमको कहते हैं ?

उत्तर-असंख्याता पूर्व का एक पल्योपम होता है । एक

वाले, ८ मण्यंगा—रत्नजडित आभूषण देने वाले, ९ गेहा-कारा—विविध प्रकार के भवनों में परिणत होने वाले (मकान की तरह आश्रय देने वाले), १० अणियाणा—वस्त्रादि देने वाले।

६० प्र.—उत्सर्पिणी काल किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस काल में जीवों के संहनन और संस्थान क्रमशः अधिकाधिक शुभ होते जाय, आयु अवगाहना बढ़ती जाय तथा उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार और पराक्रमकी वृद्धि होती जाय, वह 'उत्सर्पिणी काल' है। इस काल में वर्ण, गंध, रस और स्पर्श भी क्रमशः शुभ होते जाते हैं। वह दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम का होता है।

६१ प्र.—अवसर्पिणी काल किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस काल में शरीर की अवगाहना, बल, आयु आदि घटते जाय तथा उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार और पराक्रम की कमी होती जाय वह 'अवसर्पिणी काल' है। यह दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम का होता है।

६२ प्र.—अवसर्पिणी काल में कितने आरे होते हैं ?

उत्तर—छह— १ सुपम-सुपम, २ सुपम, ३ सुपम-दुपम, ४ दुपम-सुपम, ५ दुपम, ६ दुपम-दुपम।

६३ प्र.—उत्सर्पिणी काल के कितने आरे हैं ?

उत्तर—दसके भी छह आरे हैं, किन्तु अवसर्पिणी काल के आरों से उल्टे क्रम से हैं—

१ दुपम-दुपम, २ दुपम, ३ दुपम-सुपम, ४ सुपम-दुपम,

पुद्गल-परावर्तन किये होंगे ?

उत्तर-अनंत ।

६८ प्र.-एक कालचक्र में कुल कितने आरे हैं ?

उत्तर-छः अवसर्पिणी काल के एवं छः उत्सर्पिणी काल के कुल बारह आरे होते हैं ।

६९ प्र.-बारह आरे कहाँ वर्तते हैं और इनका क्या भाव है ?

उत्तर-पाँच भरत और पाँच एरवत के १० क्षेत्रों में १२ आरे वर्तते हैं । अवसर्पिणी काल में वर्ण, गंध, रस और स्पर्श तथा जीवों के आयुष्य अवगाहना आदि घटते जाते हैं और उत्सर्पिणी काल में क्रमशः बढ़ते जाते हैं ।

७० प्र.-अवसर्पिणी काल के छह आरों का काल परिमाण क्या है ?

उत्तर-अवसर्पिणी काल के छह आरे-जिनमें प्रथम आरा चार कोड़ाकोड़ी सागरोपम का, दूसरा तीन कोड़ाकोड़ी सागरोपम का, तीसरा दो कोड़ाकोड़ी सागरोपम का, चौथा एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम में बयालीस हजार वर्ष कम, पाँचवाँ आरा इक्कीस हजार वर्ष और छट्टा आरा भी २१ हजार वर्ष का-कुल दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम के होते हैं ।

७१ प्र.-उत्सर्पिणी काल के आरों का काल परिमाण क्या है ?

उत्तर-प्रथम आरा २१ हजार वर्ष, दूसरा भी २१ हजार वर्ष, तीसरा आरा एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम में बयालीस हजार वर्ष कम, चौथा आरा दो कोड़ाकोड़ी सागरोपम का,

में और उत्सर्पिणी के प्रथम आरे के अन्त में व दूसरे आरे के प्रारंभ में दुःख प्रधान है ।

अवसर्पिणी के छठे आरे के अंत में १ व उत्सर्पिणी के प्रथम आरे के प्रारंभ में तो दुःख ही दुःख है ।

७३ प्र.—यहाँ अब कौनसा काल व आरा चर्त रहा है ?

उत्तर—अवसर्पिणी काल का पाँचवाँ आरा ।

७४ प्र.—पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर—अवस्था जो पलटती रहती है—गुण के विकार को 'पर्याय' कहते हैं अर्थात् जो द्रव्य के समान सदा स्थिर न रह कर भिन्न २ रूप में परिणत होती रहे ।

७५ प्र.—पर्याय के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो—१ युगपद् भावी—एक साथ होने वाली और २ क्रमभावी—क्रम से होने वाली ।

७६ प्र.—गुण और पर्याय में क्या भेद है ?

उत्तर—गुण केवल द्रव्याश्रित होते हैं और पर्याय उभयाश्रित—गुण और द्रव्य में मिली हुई होती है, किन्तु किसी अपेक्षा से गुण को भी पर्याय कहा है ।

७७ प्र.—पर्याय के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो व्यंजन-पर्याय और द्रव्य-पर्याय ।

७८ प्र.—व्यंजन-पर्याय किसे कहते हैं ?

१ अवसर्पिणी के छठे आरे के समाप्त होते ही उत्सर्पिणी का प्रथम आरा प्रारंभ होता है ।

८६ प्र.—धीव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—पर्यायों के बदलते रहने पर भी किसी रूप में द्रव्य का नित्य बना रहना ।

८७ प्र.—गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—द्रव्य की विशेषता—जो द्रव्य के आश्रित हो अर्थात् द्रव्य के सभी अंशों तथा दशाओं में स्थिर रहे ।

८८ प्र.—गुण कितनी प्रकार के होते हैं ?

उत्तर—दो प्रकार के—१ सामान्य गुण और २ विशेष गुण ।

८९ प्र.—सामान्य गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो सामान्यतया सभी द्रव्यों में रहे । जैसे—अस्तित्व ।

९० प्र.—विशेषगुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो सभी द्रव्यों में न रहे, किसी विशेष द्रव्य में ही रहे । जैसे—जीव में ज्ञान ।

९१ प्र.—सामान्य गुण कितने हैं ?

उत्तर—सामान्य गुण अनेक हैं, किन्तु उनमें मुख्य छह हैं—
१ अस्तित्व, २ वस्तुत्व, ३ द्रव्यत्व, ४ प्रमेयत्व, ५ अणुसत्त्व
और ६ प्रदेशत्व ।

९२ प्र.—अस्तित्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसके कारण द्रव्य सदा दृश्यमान रहे उसका कभी नाश न हो ।

९३ प्र.—प्रमेयत्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस गुण के कारण द्रव्य जिनकी भावना का विषय

आठ स्पर्शों में से प्रत्येक स्पर्श में ५ वर्ण, ५ रस, २ गंध ६ स्पर्श* और ५ संस्थान ये २३ इस तरह ८ स्पर्शों के $८ \times २३ = १८४$ एक सौ चौरासी भेद होते हैं ।

इस तरह $१०० + १०० + ४६ + १०० + १८४ = ५३०$ ये कुल पाँच सौ तीस भेद रूपी अजीव के हुए ।

२ अरूपी अजीव के ३० भेद :--धर्मास्तिकाय, अधर्मस्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल । इन चारों के द्रव्य, क्षेत्र काल, भाव और गुण प्रत्येक के पाँच भेद—कुल २० भेद होते हैं । पूर्वोक्त १० भेद (अरूपी अजीव के) मिलाकर कुल अरूप अजीव के ३० भेद ।

१०७ प्र.—अजीव राशि किसे कहते हैं ?

उत्तर—अजीव के भेदों के समूह को 'अजीव राशि' कहते हैं

*आठ स्पर्शों में एक स्वयं और एक विरोधी दो स्पर्शों को छोड़ कर



आहारक शरीर अंगोपांग, वज्रऋषभनाराच संहनन, समचतु-
रस्र संस्थान, शुभ वर्ण, शुभ गंध, शुभ रस, शुभ स्पर्श, अंगु-
लघु, पराघात, श्वासोच्छ्वास, आतप, उद्योत, शुभ-विहायोगति
निर्माण, त्रस-दक्षक, देवायु, मनुष्यायु, तिर्यचायु और तीर्थका
नामकर्म ।

४ प्र.—मनुष्यानुपूर्वी किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से मनुष्य की आनुपूर्वी मिले
जैसे—इस भव में जो जीव आगे के लिए मनुष्य गति में जन्म ले
का कर्म बांध चुका है, परन्तु मरण काल में वह शरीर क
छोड़ कर विग्रहगति से दूसरी गति में जाने लगता है, त
मनुष्यानुपूर्वी कर्म उसे खींच कर मनुष्य गति में ले जाता है
आनुपूर्वी नामकर्म बैल की नाथ के समान है । इसी प्रका
देवानुपूर्वी का स्वरूप भी समझना चाहिए ।

५ प्र.—अंगोपांग नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्म से अंग, उपांग और अंगोपांग मिले, उ
अंगोपांग नामकर्म कहते हैं ।

६ प्र.—अंग, उपांग और अंगोपांग क्या है ?

उत्तर—उरु, जानु, भुजा, मस्तक, पीठ आदि अंग है, अंगु-
आदि उपांग है, और अंगुलियों की पवंरेखा आदि अंगोपा
है । ये अंगोपांग तैजस् और कामण शरीर के नहीं होते ।

७ प्र.—वज्रऋषभनाराच संहनन किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस संहनन में दोनों ओर से मकंद बंध द्वा

१२ प्र.-शुभ स्पर्श नामकर्म क्या है ?

उत्तर-जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर में स्निग्ध आदि शुभ स्पर्श हो। शुभ स्पर्श ४ है- (१) स्निग्ध, (२) उष्ण, (३) मृदु, (४) लघु।

१३ प्र.-अगुरुलघु नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर-जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर न तो लोहे के समान अति भारी हो, और न ही अर्कतूल (आक की हड्डी) के समान अति हलका हो, अपितु मध्यम दर्जे का हो।

१४ प्र.-पराघात किसे कहते हैं ?

उत्तर-जिस कर्म के उदय से जीव अन्य वलवानों की दृष्टि में अजेय समझा जाता हो, अपने प्रभाव से अन्य को प्रभावित करने वाला हो, उसे 'पराघात कर्म' कहते हैं।

१५ प्र.-आतप किसे कहते हैं ?

उत्तर-जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर उष्ण न होकर भी उष्ण प्रकाश करे। सूर्य के मण्डल में रहने वाले पृथ्वी काय के जीव के शरीर ऐसे ही है, उन्हें आतप नामकर्म के उदय हो। वे स्वयं उष्ण न होते हुए भी उष्ण प्रकाश देते हैं।

१६ प्र.-उद्योत नामकर्म क्या है ?

उत्तर-जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर शीतल प्रकाश करने वाला हो। चन्द्रमण्डल ज्योतिषचक्र, रत्नप्रकाश, प्रकाश करने वाली औषधियाँ और लव्धि से वैक्रिय रूप धारण करने वाला शरीर, ये सब उद्योत हैं।

वीतराग देव की आराधना की जाय, निर्ग्रथों की सेवा, मांगलिक श्रवण, सामायिक, आयंघिलादि तप भीतिक स्वार्थ भावना से किया जाय, यह लोकोत्तर मिथ्यात्व है। इसका दूसरा अर्थ गोशालक जैसे को देव, निन्द्वादि को गुरु और शुभ-बंध की क्रिया को लोकोत्तर धर्म मानना भी है।

१८ कुप्रावचनिक मिथ्यात्व— निर्ग्रथ-प्रवचन के अतिरिक्त अन्य कुप्रावचनिक—मिथ्या प्रवचन के प्रवर्तक, प्रचारक और मिथ्या प्रवचन को मानना।

१९ न्यून मिथ्यात्व— जिन-मार्ग न्यून श्रद्धे—तत्त्व के स्वरूप में से कम मानना। एकाध तत्त्व या उसके किसी भेद में अविश्वासी होना।

२० अधिक मिथ्यात्व— जिन-प्रवचन से अधिक मानना मिथ्यात्व है। इतर कुदेव, कुगुरु, कुधर्म में थोड़ी भी विशेषता समझना या दिगम्बरत्व आदि की अधिक प्ररूपणा करना।

२१ विपरीत मिथ्यात्व— जिन मार्ग से विपरीत श्रद्धे— जैन देव, गुरु और धर्म से किंचित् भी विपरीत श्रद्धा प्ररूपणा करना विपरीत मिथ्यात्व है।

२२ अक्रिया मिथ्यात्व— सम्यग् चारित्र की उत्पापना करते हुए एकान्तवादी बन कर आत्मा को अक्रिय मानना। चारित्रवानों को 'क्रिया-जड़' कह कर तिरस्कार करना।

२३ अज्ञान मिथ्यात्व— ज्ञान को बंध और पाप का कारण मान कर अज्ञान को श्रेष्ठ मानना। 'ज्ञान व्यर्थ है, जाने वह

प्रशंसा सुन कर प्रसन्न होने से अथवा घी, तेल आदि के पात्र खुले रखने से उसमें संपातिम जीव गिर कर विनाश को प्राप्त होते हैं, इससे जो क्रिया लगती है ।

३२ प्र.—नैशस्त्रिकी क्रिया किसे कहते हैं ?

उत्तर—राजा आदि की आज्ञा से यंत्रों द्वारा कुएँ तालाब आदि से पानी निकाल कर बाहर फेंकने से, फव्वारा चलाने से, गोफण आदि द्वारा पत्थर, धनुष से वाण आदि फेंकने से स्वार्थवश योग्य शिष्य या पुत्र को बाहर निकाल देने से, शुद्ध एपणीय भिक्षा होने पर भी निष्कारण उसे परठा देने से जो क्रिया लगती है ।

३३ प्र.—स्वहस्तिकी क्रिया किसे कहते हैं ?

उत्तर—किसी जीव को अपने हाथ में लेकर फेंकने, पटकने ताड़ना करने या मारने से जो क्रिया लगती है ।

३४ प्र.—आज्ञापनिकी क्रिया क्या है ?

उत्तर—जीव अथवा अजीव से संबंधित आज्ञा देने से अथवा दूसरे से सजीव निर्जीव वस्तु मंगवाने से जो क्रिया लगती है

३५ प्र.—वैदारणिकी क्रिया किसे कहते हैं ?

उत्तर—जीव तथा अजीव पदार्थों को चीरने-फाड़ने अथवा घुरी एवं नकली वस्तु को असली तथा अच्छी बतला से जो क्रिया लगती है ।

३६ प्र.—अनाभोगिकी क्रिया क्या है ?

उत्तर—अनूपयोग से चीजों को उठाने, रखने से एवं अ

करणों की उपयोग पूर्वक देख कर, पूंज कर उठाना और रखना-आदान-भांड-मात्र निक्षेपणा समिति है ।

१३ प्र.-उच्चार-प्रस्रवण-खेल-सिघाण-जल्ल परिस्था-पनिका समिति क्या है ?

उत्तर-स्थण्डिल के दोषों को वर्जते हुए, परिठवने योग्य लघुनीत, बड़ीनीत, श्रुक, कफ, नाक का मैल आदि निर्जीव स्थान में यतनापूर्वक परिठवना परिस्थापनिका समिति है ।

१४ प्र.-गुणित किसे कहते हैं ?

उत्तर-मन, वचन और काया की अशुभ प्रवृत्तियों को रोकना और शुभ प्रवृत्ति करना 'गुणित' कहलाता है ।

१५ प्र.-गुणित के किनसे भेद हैं ?

उत्तर-तीन-१ मन गुणित, २ वचन गुणित ३ काय गुणित ।

१६ प्र.-मन गुणित किसे कहते हैं ?

उत्तर-आर्ज्यवान्, रोद्रध्यान, संरम्भ, सकारंभ और आरंभ लक्ष्म-दी, सफल लक्षण, धर्मध्यान सम्बन्धी निवृत्त करनी सम्बन्ध आदि स्थानों में शून्य-अशून्य योगों को रोक कर योग्य स्थानों में योग्य योगों को अथवा प्रयोग करनी समिति है ।

१७ प्र.-वचन गुणित क्या है ?

उत्तर-वचन की अशुभ प्रवृत्तियों को रोकना, सकारंभ, संरम्भ, लक्ष्म-दी, सफल लक्षण, धर्मध्यान सम्बन्धी निवृत्त करनी सम्बन्ध आदि स्थानों में शून्य-अशून्य योगों को रोक कर योग्य स्थानों में योग्य योगों को अथवा प्रयोग करनी समिति है ।



उत्तर-काल-लब्धि पा कर यथाप्रवृत्तिकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण करने से प्राप्त होती है ।

८५ प्र.-काल-लब्धि किसे कहते हैं ?

उत्तर-जिस आत्मा का मुक्त होने का स्वभाव दबा हुआ हो, जो अनादिकाल से अज्ञान रूप महान् अन्धकार में भटक रहा हो और अनादि मिथ्यात्व रूप कालिमा जमती चली आ रही हो, ऐसी आत्मा का भव्यत्व रूप स्वभाव प्रकट होने का काल निकट होने वाला हो तब उस आत्मा पर से कालिमा कम होते-होते जब उज्ज्वलता आती है, तब वह कृष्णपक्षी से शुक्लपक्षी होना है । यही काल-लब्धि कहाती है ।

८६ प्र.-कृष्णपक्षी से शुक्लपक्षी होने का सरलता से समझ में आवे ऐसा उदाहरण दीजिये ?

उत्तर-जैसे-कोई पत्थर नदी में बहता हुआ टकरा-टकरा कर बहृत काल के बाद गोल-मटोल हो जाता है, इसी प्रकार यह जीव संसार में परिभ्रमण करते हुए अनंत जन्म-मरण करते-करते और अकाम-निर्जरा करते हुए जितने समय के बाद मिथ्यात्व त्याग करने योग्य होता है, उस काल को 'काल-लब्धि' कहते हैं ।

८७ प्र.-करण किसे कहते हैं और कितने प्रकार के हैं ?

उत्तर-आत्मा का परिणाम विशेष । करण तीन प्रकार के है - १ यथाप्रवृत्तिकरण, २ अपूर्वकरण और ३ अनिवृत्तिकरण ।

८८ प्र.-यथाप्रवृत्तिकरण किसे कहते हैं ?

उत्तर-आदर्श के सिद्धांत शेष मान कर्मों में प्रत्येक की निरति को अर्थात् छोटा-छोटा सादरोपम परिमाण रग कर बाकी

विचार करके कार्य करने वाला ।

१६ विशेषज्ञ-हित और अहित को भली प्रकार से समझने वाला अथवा तत्त्व-ज्ञान को अच्छी तरह से समझने वाला ।

१७ वृद्धानुगत-ज्ञान-वृद्ध एवं अनुभव-वृद्धजनों का अनुसरण करने वाला ।

१८ विनीत-बड़ों और गुणीजनों का विनय करने वाला ।

१९ कृतज्ञ-अपने पर दूसरों के द्वारा किये हुए उपकार को नहीं भूलने वाला ।

२० पर-हितार्थ-दूसरों का हित करने में तत्पर रहने वाला ।

२१ लब्ध लक्ष्य-जिसने अपने लक्ष्य को अच्छी तरह समझ कर प्राप्त कर लिया हो ।

२४५ प्र.-मनोरथ किसे कहते हैं ?

उत्तर-संसार में अनेक प्रकार की शुभ-अशुभ आकांक्षा हुई करती है, परन्तु जो आत्म-विकास के लिए शुभ आकांक्षा करते हैं, उसे हितकारी मनोरथ कहते हैं ।

२४६ प्र.-मनोरथ के कितने भेद हैं ?

उत्तर-तीन भेद हैं—१ आरंभ-परिग्रह त्याग की भावना २ महाव्रत धारण करने का मनोरथ, ३ मृत्यु समय से पूर्व संथारा करने की कामना ।

आरंभ परिग्रह तजी करी, पंच महाव्रत धार ।

अंत समय आलोचना, करूं संथारो सार ॥

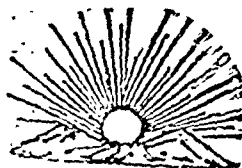
२४७ प्र.-मनोरथ का पहला भेद किस प्रकार का है ?

उत्तर-श्रावकजी प्रतिदिन ऐसा चिंतन करे कि कब

की महानिर्जरा करता है, संसार का अंत करता है, मोक्ष के संमुख होता है और अनुक्रम से सब दुःखों से छूट कर मोक्ष के अक्षय सुख पाता है ।

२५१ प्र.—विश्रान्ति कितनी है ?

उत्तर—चार है—१ भार उठाने वाला भार को एक कंधे से दूसरे कंधे पर ले, यह प्रथम विश्रान्ति, २ चबूतरा आदि पर भार को टेक खड़ा रहना, यह दूसरी विश्रान्ति, ३ भार हटा कर लघुनीत-वड़ीनीत की शंका निवृत्त करना यह तीसरी विश्रान्ति, ४ जहाँ पर भार पहुँचाना हो, वहाँ पहुँचा देना यह चौथी विश्रान्ति । इसी प्रकार श्रावक की चार विश्रान्तियाँ निम्न हैं—१ अणुव्रत आदि निर्मल पालना, पहली विश्रान्ति, २ मामायिक-देशावकासिक व्रत आदि करना दूसरी विश्रान्ति, ३ पीपद्य व्रत करना, तीसरी विश्रान्ति और ४ यावज्जीवन संयारा करना चौथी विश्रान्ति है ।



इत्वरिक अनशन कहते हैं। इसके चौदह भेद हैं—१ चतुर्थ भक्त, २ षष्ठ भक्त, ३ अष्टम भक्त, ४ दशम भक्त, ५ द्वादश भक्त, ६ चतुर्दश भक्त, ७ षोडश भक्त, ८ अर्द्धमासिक, ९ मासिक, १० द्विमासिक, ११ त्रैमासिक, १२ चातुर्मासिक, १३ पंचमासिक और १४ षाण्मासिक।

८ प्र.—यावत्कथिक अनशन के कितने भेद हैं ?

उत्तर—छह भेद है—१ पादपोषगमन, २ भक्त-प्रत्याख्यान और ३ इंगित मरण। इन तीनों के निहारिम और अनिहारिम ऐसे छह भेद होते हैं।

९ प्र.—पादपोषगमन किसे कहते हैं ?

उत्तर—चारों आहार का त्याग करके अपने शरीर के किसी भी अंग को किंचित् मात्र भी न हिलाते हुए, वृक्ष की टूट का भूमि पर पड़ी हुई डाल के समान निश्चल रूप से संथार करना 'पादपोषगमन' कहलाता है।

१० प्र.—भक्त-प्रत्याख्यान क्या है ?

उत्तर—यावज्जीवन तीन या चारों आहार का त्याग करके संथारा करना।

११ प्र.—इंगित मरण किसे कहते हैं ?

उत्तर—यावज्जीवन चारों प्रकार के आहार का त्याग क निश्चित स्थान में हिलने-डुलने का आहार रख कर किय जाने वाला संथारा।

१२ प्र.—ऊनोदरी किसे कहते हैं ?

अल्प शब्द बोलना, कषाय के वश होकर भाषण न करना तथा हृदय में रहे हुए कषाय को शांत करना भाव ऊनोदरी है।

१६ प्र.—भिक्षाचर्या किसे कहते हैं और कितने भेद हैं ?

उत्तर—विविध प्रकार का अभिग्रह लेकर भिक्षा का संकोच करते हुए विचरना 'भिक्षाचर्या' तप है। इसके तीस भेद हैं।

२० प्र.—रसपरित्याग क्या है ?

उत्तर—विकार वर्धक दूध, दही, घी आदि विषयों तथा प्रणीत (गरिष्ठ) खान-पान की वस्तुओं का त्याग करना रसना इन्द्रिय का निग्रह करना और रस-लोलुपता का त्याग करना 'रस-परित्याग' है।

२१ प्र.—रस परित्याग के कितने भेद हैं ?

उत्तर—इसके सामान्यतः नौ भेद हैं—१ विषय त्याग—घृत, तेल, दूध दही, गुड़-शक्कर आदि विकार बढ़ाने वा वस्तुओं का त्याग करना। २ प्रणीत रस त्याग—जिससे आदि की वृद्धि टपक रही हो, ऐसे आहार का त्याग करना। ३ आपन्चिल—रूखी रोटी, भात अथवा भूने चने आदि का त्याग करना। ४ आयामसिद्ध भोजी—ओसामन आदि के रस गिरे हुए चावल आदि ही लेना। ५ अरसाहार—नमक, जीरा आदि मसालों के बिना रस-रहित आहार करना। ६ विर

भेदों के लिए उक्ताइय मू. १६ अथवा 'भोक्षमार्ग' पृ. ५०५ देखें।

उत्तर-क्रोध, मान, माया और लोभ का उदय न होने देना तथा उदय में आये हुए कषाय को निष्फल बना देना ।

२६ प्र.-योग प्रतिसंलीनता के कितने भेद हैं ?

उत्तर-तीन-१ मन-प्रतिसंलीनता, २ वचन-प्रतिसंलीनता और ३ काय-प्रतिसंलीनता ।

२७ प्र.-मन-प्रतिसंलीनता किसे कहते हैं ?

उत्तर-मन की अकुशल (बुरी-पापकारी) प्रवृत्ति रोकना तथा कुशल (भली) प्रवृत्ति करना और चित्तको एकाग्र-स्थिर रखना

२८ प्र.-वचन-प्रतिसंलीनता क्या है ?

उत्तर-अशुभ वचन का त्याग कर शुभ निर्दोष वचन बोलना प्रिय बोलना ।

२९ प्र.-काययोग-प्रतिसंलीनता किसे कहते हैं ?

उत्तर-अच्छी तरह समाधिपूर्वक ध्यात होकर, हाथ-मकुचिन्त करके कच्छुप की तरह गुप्तेन्द्रिय होकर स्थिर होना

३० प्र.-विविक्त ध्ययामनता किसे कहते हैं ?

उत्तर-श्री, पशु और नपुंसक में रहित ऐंसे ध्यान, आर देवानय और ममा आदि निर्दोष ध्यान में प्राणिक और एष्य ध्या-मथारा लेकर रहना विविक्त ध्ययामनता कहलाती

३१ प्र.-आभ्यन्तर तप किसे कहते हैं ?

उत्तर-जिस तप का सम्बन्ध आत्म भाव से हो, आभ्यन्तर तप कहते हैं ।

३२ प्र.-प्रायश्चित्त किसे कहते हैं ?

उत्तर-जिसमें मूलगुण और उत्तरगुण विषयक अति

३५ प्र.—विनय तप के कितने भेद हैं ?

उत्तर—सात—१ ज्ञान विनय, २ दर्शन विनय, ३ चाँद विनय, ४ मन विनय, ५ वचन विनय, ६ काय विनय, और लोकोपचार विनय ।

३६ प्र.—वैयावृत्य तप किसे कहते हैं ?

उत्तर—गुरु, तपस्वी, रोगी, वृद्ध, नवदीक्षित साधु का आहार-पानी आदि से सेवा करना और संयम पालन में सहायता देना—'वैयावृत्य' तप कहलाता है ।

३७ प्र.—वैयावृत्य के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दस भेद इस प्रकार हैं—१ आचार्य, २ उपाध्याय, ३ स्थविर, ४ तपस्वी, ५ ग्लान (रोगी) ६ शैश (नवदीक्षित) ७ कुलङ्ग, ८ गण और १० साधर्मिक की वैयावृत्य करना ।

३८ प्र.—स्वाध्याय क्या है ? इसके कितने भेद हैं ?

उत्तर—अस्वाध्याय काल टाल कर मर्यादापूर्वक शास्त्रों का अध्ययन-अध्यापन आदि करना 'स्वाध्याय' तप है । स्वाध्याय पाँच भेद हैं । यथा—१ वाचना, २ पृच्छना, ३ परिवर्तना, अनुप्रेक्षा और ५ धर्मकथा ।

३९ प्र.—वाचना किसे कहते हैं ?

उत्तर—शिष्य को सूत्र और अर्थ पढ़ाना वाचना है ।

४० प्र.—पृच्छना किसे कहते हैं ?

उत्तर—वाचना प्रदण करके उममें संदेह होने पर पृच्छना अथवा पढ़ने सीधे हुए सूत्रादि ज्ञान को विनयेप सम

इस प्रकार शिष्य के यहाँ एक एक के शिष्यों को 'बुद्ध' कहते हैं—पर

इसके चार भेद है—१ आर्त्तध्यान, २ रौद्रध्यान, ३ धर्मध्यान और ४ शुक्लध्यान ।

४६ प्र.—आर्त्तध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर—आर्त्त अर्थात् दुःख के निमित्त से या भावी दुःख की आशंका से होने वाला ध्यान आर्त्तध्यान कहलाता है ।

४७ प्र.—आर्त्तध्यान के कितने लिंग हैं ?

उत्तर—चार लिंग हैं यथा—१ आक्रन्दन—ऊँचे स्वर रोना-चिल्लाना, २ शोचन—आँखों में आँसू लाकर दीन भलाना, ३ परिवेदना—बार-बार विलम्ब भाषण करना, विलम्ब करना, ४ तेपनता—टपटप आँसू गिराना । इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग और वेदना के निमित्त से ये चार चिन्ह होते हैं ।

४८ प्र.—आर्त्तध्यान के कितने भेद होते हैं ?

उत्तर—१ अमनोज्ञ संयोग के वियोग की चिन्ता, २ अवियोग चिन्ता, ३ रोग-मुक्ति चिन्ता और ४ कामभोग अयोग चिन्ता ।

४९ प्र.—रौद्रध्यान क्या है ?

उत्तर—क्रोध की परिणति अथवा क्रूरता के भाव जिन पर रहे हों । दूसरों को मारने, पीटने, ठगने एवं दुःखी करने की भावना जिस चित्त के मूल में हो, ऐसे कुचिन्तन युक्त ध्यान को रौद्र-ध्यान कहते हैं ।

५० प्र.—रौद्रध्यान के कितने भेद हैं ?

उत्तर—चार—१ हिसानुबंधी—हिसा से सम्बन्धित एकाग्र चिन्तन, २ मृपानुबंधी—असत्य से सम्बन्धित एकाग्र चिन्तन

उत्तर—चार आलम्बन (अवलम्बन) कहे गये हैं—
वाचना, २ पृच्छना, ३ परिवर्तना और ४ धर्मकथा ।

५५ प्र.—धर्मध्यान की कितनी अनुप्रेक्षाएँ हैं ?

उत्तर—चार—१ अनित्य भावना, २ अशरण भावना,
एकत्व भावना और ४ संसार भावना ।

५६ प्र.—शुक्लध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर—पूर्व विषयक श्रुत के आधार से घातिकर्मों को न
कर आत्मा को विशेष रूप से स्वच्छ बनाने वाला परम ध्य
अथवा मन की अत्यंत स्थिरता और योग का निरोध—'शु
ध्यान' कहलाता है ।

५७ प्र.—शुक्लध्यान के कितने भेद हैं ?

उत्तर—चार—१ पृथक्त्व-वितर्क-सविचारी, २ एकत्व वि
अविचारी, ३ सूक्ष्म क्रिया अनिवर्ती और ४ समुच्छिन्न-
अप्रतिपाती ।

५८ प्र.—शुक्लध्यान के चार लक्षण कौन २ से हैं ?

उत्तर—१ अव्यथा—देवादि के उपसर्ग से चलित
होना—पीड़ा का आत्मा पर असर नहीं होने देना, २ असम्मं
गहन विषयों में अथवा देवादि कृत छलना में सम्मोह नहीं
३ विवेक—आत्मा को देह से तथा समस्त सांसारिक
से भिन्न मानना, ४ व्युत्सर्ग—निःसंगता से देह और
का त्याग करना ।

५९ प्र.—शुक्लध्यान के कितने आलंबन हैं ?

उत्तर—शुक्लध्यान के चार आलंबन इस प्रकार हैं—

उत्तर—अपने गण (गच्छ) का त्याग करके 'जिनकल्प' स्वीकार करना अर्थात् निःसंग होकर आत्म-निर्भर हो जाना

६५ प्र.—उपधि व्युत्सर्ग क्या है ?

उत्तर—उपकरणों से हलका होना, अपनी आवश्यकता को अत्यंत कम कर देना, किसी कल्प विशेष में उपधि त्याग करना ।

६६ प्र.—भवतपान व्युत्सर्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर—आहार-पानी का और उसकी आसक्ति का त्याग

६७ प्र.—भाव व्युत्सर्ग के कितने भेद हैं ?

उत्तर—भाव व्युत्सर्ग के तीन भेद कहे गये हैं—

१ कपाय व्युत्सर्ग—क्रोध, मान, माया, और लोभ त्याग करना ।

२ संसार व्युत्सर्ग—आत्मदशा से विपरीत परिणामों का त्याग । नरक, तिर्यंच, आदि गति के बंध के कारण मिथ्याकारणों का त्याग करना ।

३ कर्म व्युत्सर्ग—ज्ञानावरणादि आठ कर्मों के कारणों का त्याग करना ।



वर्गणा कहते हैं। अर्थात् चौदह पूर्वधारी मुनि को तत्त्व कोई शंका होने पर केवली भगवान के पास भेजने के लिए एक हाथ का शरीर बनाते हैं, उस शरीर रूप परिणमत योग्य वर्गणा को आहारक-वर्गणा कहते हैं।

११ प्र.-तैजस्-वर्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर-औदारिक और वैक्रिय शरीर को कांति देने वाला और आहार को पचाने वाला ऐसा तैजस्-शरीर जिस वर्गणा से बने, उसे तैजस् वर्गणा कहते हैं।

१२ प्र.-भाषा-वर्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर-जो वर्गणा शब्द रूप बने। इसी प्रकार पुद्गल समूह के जो प्रकार श्वासोच्छ्वास, मन और कर्म रूप बनते हैं; उन्हें श्वासोच्छ्वास-वर्गणा, मनोवर्गणा और कर्मण-वर्गणा कहते हैं।

१३ प्र.-कर्म की प्रकृतियों कितनी है ?

उत्तर-मूल प्रकृति और उत्तर प्रकृति के भेद से दो है।

१४ प्र.-मूल प्रकृति किसे कहते हैं ?

उत्तर-कर्मों के मुख्य भेदों को मूल प्रकृति कहते हैं।

१५ प्र.-उत्तर-प्रकृति किसे कहते हैं ?

उत्तर-कर्मों के अवान्तर भेदों को उत्तर प्रकृति कहते हैं।

१६ प्र.-कर्म से आत्मा को क्या हानि होती है ?

उत्तर-आत्म-शक्ति बंदी बन कर दब जाती है। उसका परमात्म स्वरूप अवरुद्ध हो जाता है।

१७ प्र.-कर्म कितने और कौन २ से हैं ?

जैसे—बादलों से सूर्य ढँक जाता है और पानी में छुपे मनुष्य को तोप की आवाज नहीं सुनायी देती।

२७ प्र.—दर्शनावरणीय किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो कर्म आत्मा के दर्शन गुण को आच्छादित करे

२८ प्र.—दर्शनावरणीय कर्म क्या करता है ?

उत्तर—यह वस्तु को देखने नहीं देता। दर्शनावरणीय वस्तु को देखने में आवरण रूप है। जैसे—द्वारपाल के रोकने पर राजा के दर्शन नहीं हो पाते।

२९ प्र.—वेदनीय किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो कर्म आत्मा को सुख-दुःख का अनुभव करे वह वेदनीय कर्म है।

३० प्र.—वेदनीय कर्म का क्या कार्य है ?

उत्तर—इन्द्रियों को अपना रूपादि विषयों का अनुभव का वेदनीय कर्म द्वारा होता है। उममें दुःख रूप अनुभव का अमाता-वेदनीय है, तथा सुख रूप अनुभव कराना स वेदनीय है।

३१ प्र.—डमका कैसा परिणाम है ?

उत्तर—यह महद से छिपटी हुई तलवार की धार की तरह सुख-दुःख का आम्बादन कराना है। चखने से मीठा गुण तथा चिक्का कटने से बद्ध दुःख होता है, इसी प्रकार वेदनीय कर्म सुख-दुःख का अनुभव कराना है।

३२ प्र.—मोहनीय कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो कर्म आत्मा को मूढ़ बना कर स्व-पर एवं विद-

उत्तर-जीव की चाल हाथी बल की चाल के समान शु हो या ऊँट, गधे की चाल के समान अशुम हो ।

१३६ प्र.-पराघात नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर-जिम कर्म के उदय से जीव बड़े-बड़े बलवानों व दृष्टि में भी अजेय लगे । अपने से अन्य को प्रभावित करने वाला

१३७ प्र.-श्वासोच्छ्वास नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर-बाहरी हवा को शरीर में नासिका द्वारा खींच (श्वास) और अंदर की हवा को नासिका द्वारा बाहर छोड़ (उच्छ्वास) ।

१३८ प्र.-आनाप नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर-शरीर आताप रूप प्रकाश करने वाला हो, जे सूर्यमंडल की पृथ्वीकाय का शरीर ।

१३९ प्र.-उद्योत नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर-जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर शीत प्रकाश फैलाता हो, उद्योत रूप शरीर हो, जैसे चंद्रमंडल, नक्षत्रादि ।

१४० प्र.-अगुरुलघु नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर-जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर न भार हो और न हलका ही हो ।

१४१ प्र.-तीर्थकर नाम कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर-जिस सर्वोत्तम पुण्य-प्रकृति के उदय से तीर्थकर पद की प्राप्ति हो ।

१४२ प्र.-निर्माण नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर-शरीर के अंग और उपांग अपने २ स्थान पर व्यव

उत्तर—गले से निकले हुए स्वर का अच्छा होना ।

१५२ प्र.—आदेय नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से जीव का वचन सर्वमान्य हो

१५३ प्र.—यशःकीर्ति नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से संसार में यश और कीर्ति फैले । एक दिशा में प्रशंसा फैले, उसे कीर्ति कहते हैं । मनुष्य की दिशाओं में प्रशंसा होना यश कहलाता है ।

१५४ प्र.—स्थावर नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जीव का जहाँ है, वहीं स्थिर रहना । सर्दी-ज्वर आदि से बचने के लिए उपाय न कर सकना । पृथ्वी, अप, वायु और वनस्पति स्थावरकाय हैं ।

१५५ प्र.—सूक्ष्म नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—सूक्ष्म शरीर अत्यंत सूक्ष्म जिसे चर्म-चक्षु ही नहीं सके जो किसी को न रोके और न किसी से रुके ।

१५६ प्र.—अपर्याप्ति नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—जीव का अपनी पर्याप्ति पूर्ण न कर सकना । दो भेद हैं—१ लब्धपर्याप्ति और २ करणापर्याप्ति ।

१५७ प्र.—लब्धपर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस कर्म के उदय से जीव अपनी पर्याप्ति किये बिना ही मरे ।

१५८ प्र.—करणापर्याप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसके उदय से आहार, शरीर और इंद्रियों को अभी तक पूर्ण नहीं किया, किंतु आ

हो, उसे उच्च गोत्र कहते हैं ?

१६८ प्र.—नीच गोत्र क्या है ?

उत्तर—नीचे कुल में जन्म होना ।

१६९ प्र.—अंतराय कर्म के कितने भेद हैं ?

उत्तर—पाँच—१ दानान्तराय, २ लाभान्तराय, ३ भोगान्तराय, ४ उपभोगान्तराय और ५ वीर्यान्तराय ।

१७० प्र.—दानान्तराय किसे कहते हैं ?

उत्तर—दान की सामग्री तैयार है, गुणवान पात्र आ हुआ है, दाता दान का फल भी जानता है । इस पर भी जिस कर्म के उदय से जीव को दान करने का उत्साह नहीं होता वह दानान्तराय कर्म है ।

१७१ प्र.—लाभान्तराय किसे कहते हैं ?

उत्तर—योग्य सामग्री के रहते हुए भी जिस कर्म के उदय से अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति नहीं होती, वह लाभान्तराय है । जैसे—दाता के उदार होते हुए, दान की सामग्री विद्यमान रहते हुए तथा माँगने की कला में कुशल होते हुए भी याचक दान नहीं पाता । यह लाभान्तराय कर्म का ही फल डना चाहिए ।

१७२ प्र.—भोगान्तराय किसे कहते हैं ?

उत्तर—त्याग-प्रत्याख्यान के उ होते हुए तथा भोग उच्छेद रहते हुए भी जिस कर्म के उदय से जीव विद्यमान दान भोग सामग्री का कृपणता वश या किसी बाधा के वश भोग न कर सके, वह भोगान्तराय कर्म है ।

उत्तर-जो वस्तु एक वार भोगी जाकर रुक जाय उसे भोग कहते हैं । जैसे—फल, भोजन आदि ।

१७६ प्र.—उपभोग किसे कहते है ?

उत्तर-जो वस्तु वार २ भोगने में आए, उसे उपभोग कहते हैं । जैसे—घर, वस्त्र आदि ।

१८० प्र.—सर्वघाति कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर-जो जीव के स्वाभाविक गुणों का सम्पूर्ण रूप से घात करे ।

१८१ प्र.—देशघाति कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर-जो जीव के स्वाभाविक गुणों का देशतः (आंशिक) घात करे ।

१८२ प्र.—सर्वघाति प्रकृतियां कितनी है ?

उत्तर-इक्कीस— १ केवलज्ञानावरणीय, २ केवलदर्शनावरणीय, ३-७ पांच निद्रा, ८-११ अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, १२-१५ अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभ, १६-१९ प्रत्याख्यानावरणीय चीक, २० मिथ्यात्व-मोहनीय और २१ मिथ्य-मोहनीय ।

१८३ प्र.—देशघाति कर्म की कितनी प्रकृतियां है ?

उत्तर-छत्वीस— १ मतिज्ञानावरणीय, २ श्रुतज्ञानावरणीय, ३ अवधिज्ञानावरणीय, ४ मनःपर्ययज्ञानावरणीय, ५ चक्षुःदर्शनावरणीय, ६ अचक्षुदर्शनावरणीय, ७ अवधिदर्शनावरणीय, ८-११ संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, १२-२० नो-कषाय, २१ मन्वकत्व-मोहनीय, और २२-२६ पांच अंतराय ।

१८४ प्र.—जीवविपत्ती कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर-जिस कर्म उदय से जीव मरण-स्थान से उत्पत्ति के स्थान पर पहुँचे, उसे क्षेत्र-विपाकी कर्म कहते हैं।

१९० प्र.-क्षेत्र-विपाकी कर्म के कितने भेद हैं?

उत्तर-चार १. नरकानुपूर्वी, २. तिर्यचानुपूर्वी, ३. मनुष्यानुपूर्वी और ४. देवानुपूर्वी।

१९१ प्र.-पुण्य-प्रकृति के कितने भेद हैं?

उत्तर-पुण्य-प्रकृति के ४२ बयालीस भेद हैं।

१९२ प्र.-पाप-प्रकृति के कितने भेद हैं?

उत्तर-पाप-प्रकृति के ८२ बयासी भेद हैं।

१९३ प्र.-आवाधाकाल किसे कहते हैं?

उत्तर-कर्म-बंध होने के प्रथम समय से लेकर जब तक उस कर्म का उदय या उदीरणाकरण नहीं होता, तब तक का काल 'आवाधा काल' कहलाता है।

१९४ प्र.-कर्म-स्थिति किसे कहते हैं?

उत्तर-जितने काल तक जीव के साथ कर्म लगा रहे, उसे स्थिति कहते हैं।

१९५ प्र.-जानावरणीय, दर्शनावरणीय और अंतराय कर्म की कितनी स्थिति है?

उत्तर-जानावरणीय, दर्शनावरणीय और अंतराय की जघन्य स्थिति अन्नमूहृत और उत्कृष्ट तीस-कोड़ाकोड़ी माण रोपम की है।

१९६ प्र.-मातावेदनीय की कितनी स्थिति है?

उत्तर-मातावेदनीय कर्म की जघन्य स्थिति ईर्ष्यापयि

काल जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट अपनी-अपनी स्थिति के द कोड़ाकोड़ी सागरोपम वरावर एक हजार वर्ष के होता है। जैसे मोहनीय कर्म की उ. स्थिति सित्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम व है, तो उसका आयाधाकाल ज० अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट सात हजार वर्ष का होगा।

२०४ प्र.-समुद्घात किसे कहते हैं ?

उत्तर-वेदनादि कारण से तद्रूप ही कर कालान्तर अनुभव करने योग्य कर्म के अंशों को पहले ही उदय में लाक प्रचलता से घात (निर्जरा) करना समुद्घात है। अथवा मृ शरीर को छोड़े बिना जीव के प्रदेशों का बाहर निकलना 'समुद्घात' कहलाता है ?

२०५ प्र.-समुद्घात कितने प्रकार का है ?

उत्तर-सात प्रकार का—१ वेदनीय, २ कपाय, ३ सा णांतिक ४ वैक्रिय, ५ आहारक, ६ तैजस् और ७ केवली।

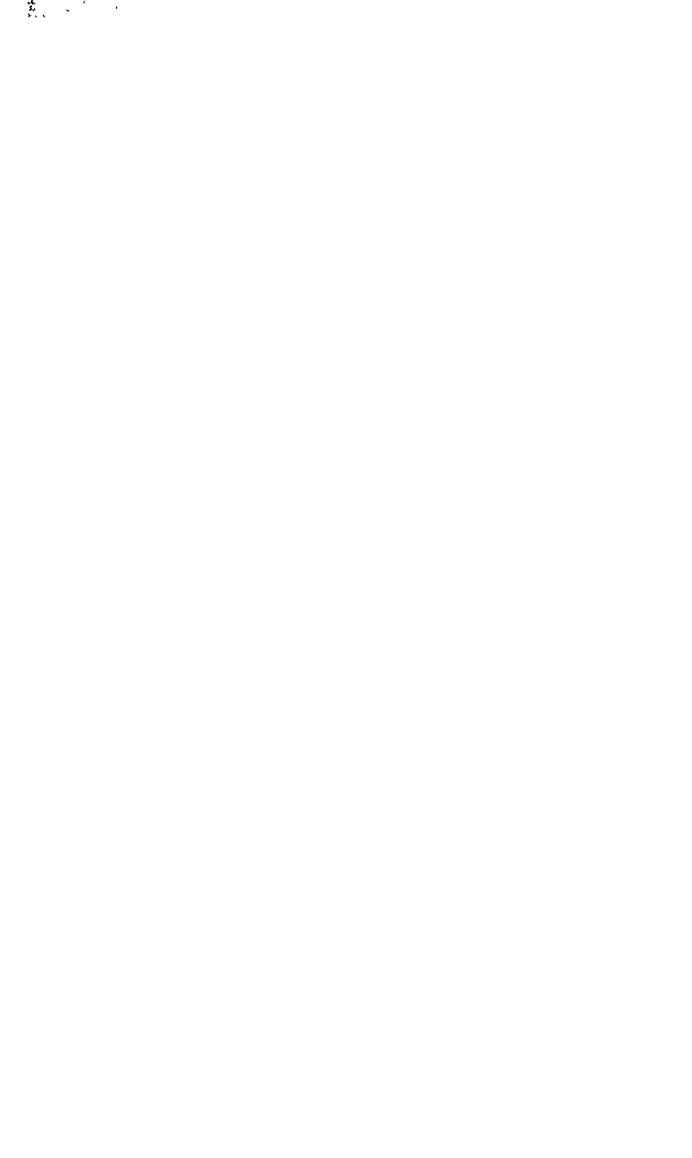
२०६ प्र.-वेदनीय-समुद्घात किसे कहते हैं ?

उत्तर-अधिक दुःख होने पर आत्मा के प्रदेशों को बाह निकालते हुए कर्मांशों की विशेष निर्जरा करना, वेदनीय समु घात कहलाता है।

२०७ प्र.-कपाय-समुद्घात किसे कहते हैं ?

उत्तर-क्रोध आदि कपायों का तीव्र उदय होने से म शरीर को बिना छोड़े आत्म-प्रदेशों को बाहर निकालते कर्मांशों की निर्जरा करना कपाय-समुद्घात है।

२०८ प्र.-मारणांतिक-समुद्घात किसे कहते हैं ?



उत्तर-सर्वज्ञ प्रभु के चार अघातिया कर्मों में से आयुक्त की स्थिति कम और वेदनीय, नाम तथा गोत्र की स्थिति अधिक रहती है, तब पहले अन्तर्मुहूर्त तक आवर्जीकरण करते हैं और पीछे अन्तर्मुहूर्त बाकी रहने पर समुद्घात करके उन कर्मों को आयुक्त के बराबर करते हैं, उसे केवली-समुद्घात कहते हैं ।

२१४ प्र.-केवली-समुद्घात में कितना समय लगता है ?

उत्तर-इसमें आठ समय लगते हैं—पहले समय में आत्म-प्रदेशों की शरीर के बराबर मीटा और लोकान्त स्पर्श करने वाला दंड रूप करते हैं । दूसरे समय में पूर्व-पश्चिम में कपाट करते हैं । तीसरे समय में उत्तर-दक्षिण में लम्बे विस्तार का मंथान करते हैं । चौथे समय में अंतरों को पूरते हैं (समस्त लोकाकाश में व्याप्त कर देते हैं) । पाँचवें समय में अन्तस्थ प्रदेशों को संकोचते, छठे में मंथान को, सातवें में कपाट को और आठवें समय में दंड को संकोच कर मूल शरीरस्थ हो जाते हैं ।

२१५ प्र.-आवर्जीकरण किसे कहते हैं ?

उत्तर-आवर्जन अर्थात् केवली का उपयोग—मनोव्यापार । बाकी बचे हुए कर्म को उदयावलिका में प्रक्षेपण करने की क्रिया को आवर्जीकरण कहते हैं । यह आवर्जीकरण मोक्षगामी को अवश्य करना पड़ता है ।

२१६ प्र.-मार्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर-जिन धर्मों में जीवों का अन्वेपण किया जाय, जीवों

उत्तर—जिसमें हिताहित जानने, मनन करने रूपद्रव्य मन हो, वह 'संज्ञी' है और द्रव्य मन न हो वो असंज्ञी है।

२२३ प्र.—भाव मन किसे कहते हैं और यह किसे होता है ?

उत्तर—सुख-दुःख का अनुभव कर राग-द्वेष करने रूप भाव-मन प्रत्येक जीव को होता है, जिसके द्वारा भाव-लेख्य के शुभाशुभ भाव होते हैं।

२२४ प्र.—आहार वर्गणा के दो भेद कौन-२ से है ?

उत्तर—जो आहार ग्रहण करे वह 'आहारक' और जो आहार ग्रहण न करे, उसे 'अनाहारक' कहते हैं ?

२२५ प्र.—आहार के कितने भेद है ?

उत्तर—आहार तीन प्रकार का है—१ ओज आहार, २ लोमाहार और ३ कवलाहार।

२२६ प्र.—ओज आहार किसे कहते हैं ?

उत्तर—उत्पत्ति क्षेत्र में पहुँच कर अपर्याप्त अवस्था में तैजस् और कार्मण शरीर द्वारा जीव जिस आहार को ग्रहण करता है, उसे ओजाहार कहते हैं।

२२७ प्र.—लोमाहार क्या है ?

उत्तर—त्वचा और रोंगटो से ग्रहण किया जाने वाला आहार।

२२८ प्र.—कवलाहार किसे कहते हैं ?

उत्तर—मुख द्वारा ग्रहण किया जाने वाला अन्न, पानी आदि चार प्रकार का आहार कवलाहार कहलाता है।

२२९ प्र.—जीव कब आहारक और अनाहारक होता है ?

उत्तर—जीव एक शरीर को छोड़ कर दूसरे शरीर में जाता

उत्तर—मोहनीय कर्म के उपशम से होने वाला भाव औपशमिक कहलाता है

२३४ प्र.—औपशमिक भाव के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद हैं—१ उपशम सम्यक्त्व और २ औपशमिव चारित्र्य ।

२३५ प्र.—क्षायिक भाव किसे कहते हैं ?

उत्तर—किसी भी कर्म के क्षय से होने वाला भाव क्षायिक भाव है

२३६ प्र.—क्षायिक भाव के कितने भेद हैं ?

उत्तर—इसके नव भेद हैं—१ केवलज्ञान, २ केवलदर्शन, ३ क्षायिक सम्यक्त्व, ४ क्षायिक चारित्र्य, ५ दान, ६ लाभ, ७ भोग, ८ उपभोग और ९ वीर्य ।

२३७ प्र.—क्षायोपशमिक भाव किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो भाव घाति-कर्म के क्षयोपशम से हो ।

२३८ प्र.—क्षायोपशमिक भाव के कितने भेद हैं ?

उत्तर—अठारह भेद हैं—१ मतिज्ञान, २ श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, ४ मनःपर्यवज्ञान, ५ मति अज्ञान, ६ श्रुत अज्ञान, ७ विभंगज्ञान, ८ चक्षुदर्शन, ९ अचक्षु दर्शन, १० अवधि दर्शन, ११ दान, १२ लाभ, १३ भोग, १४ उपभोग, १५ वीर्य, १६ सम्यक्त्व, १७ चारित्र्य, और १८ देशसंयम ।

२३९ प्र.—पारिणामिक भाव किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो कर्म के क्षयादिक की अपेक्षा न रखकर केवल जीव का स्वभाव मात्र हो ।

२४० प्र.—पारिणामिक भाव के कितने भेद हैं ?

या देश-घाति रूप में परिणमन होना और तीव्र फल देने की शक्ति का मंद शक्ति रूप में परिणमन होने को क्षयोपशम कहते हैं। जैसे—फिटकरी आदि द्रव्यों के संयोग से मल का जल में कुछ बैठ जाना और कुछ अव्यक्त मिला रहना।

२४७ प्र.—आत्मा के प्रदेश कितने हैं, व शरीर में कहाँ है ?

उत्तर—आत्मा के असंख्यात प्रदेश हैं और वे सारे शरीर में व्याप्त है।

२४८ प्र.—आत्मा में कर्म किस तरह आकर चिपक जाते हैं ?

उत्तर—शरीर में तेल लगा कर कोई धूलि पर लेट जाय तब धूलि उसके शरीर पर चिपक जाती है, उसी तरह मिथ्यात्व, अन्नत, प्रमाद, कपाय, और योग से जीव के प्रदेशों में एक प्रकार का परिस्पंद (हलचल) होती है, तब जिस आकाश में आत्मा के प्रदेश है, वहीं के अनंतानन्त कर्म योग्य पुद्गल जीव के प्रत्येक प्रदेश के साथ बंध जाते हैं। इस प्रकार जीव और कर्म का परस्पर बंध हो जाता है।

२४९ प्र.—वे आपस में किस तरह मिले रहते हैं ?

उत्तर—दूध में पानी, कपड़े में मैल, और लोहे में आग की तरह एकमेक हैं।

२५० प्र.—यह संबंध कब से है ?

उत्तर—कर्म और जीव का अनादिकाल से सम्बन्ध चला आ रहा है। प्रत्येक समय पुराने कर्म अपना फल दे कर आत्मा से अलग होते रहते हैं और नवीन कर्म प्रति समय बंधते रहते हैं।

२५१ प्र.—कर्म और जीव का आदि सम्बन्ध मान लिया

उत्तर-प्रकृति और प्रदेश-बंध होने का कारण मन, तबल और काया के योग है, स्थिति बंध और अन्तर्भाग तबल का कारण क्रोध, मान, माया, लोभ और राग-द्वेष के निमित्त है। सभी कर्मों में मोहनीय-कर्म प्रधान है। आठ कर्मों का राजा है और जब तक मोहनीय कर्म का उदय है, तब तक कर्म का बध होता रहता है। जब दर्शन-मोहनीय का नाश होता है तब ही जीव मोक्ष की ओर अग्रसर हो सकता है। जब चारित्र्य-मोहनीय का क्षय होता है, तब अनंत गुण (मोक्ष) की प्राप्ति होती है। जैसे वृक्ष का मूल नष्ट होने पर वृक्ष विनाश को प्राप्त होता है, मेनाधिपति की मृत्यु होने पर सेना हार जाती है। उसी तरह मोहनीय-कर्म का नाश करने से सभी कर्मों का नाश होता है।

२६२ प्र.-जीव किस प्रकार के परमाणुओं के स्कंध को ग्रहण करता है ?

उत्तर-संख्यात, असंख्यात अथवा अनंत परमाणुओं से बने हुए स्कंध को जीव ग्रहण न करके अनंतानन्त परमाणुओं से बने हुए स्कंध को ग्रहण करता है।



अभाव होने से जीव व पुद्गल द्रव्य की गति अथवा स्थिति नहीं हो सकती है। जिससे सिद्ध भगवान लोक के आखिरी चरमन्ति तक पहुँच कर वहीं स्थिर होते हैं।

१७ प्र.—सिद्ध भगवान और अलोक के बीच में कितना अंतर है ?

उत्तर—जैसे धूप व छाया के बीच में अंतर नहीं होता है, ठीक उसी प्रकार सिद्ध भगवंत और अलोक बीच में अंतर नहीं होता।

१८ प्र.—सिद्ध भगवान जिस क्षेत्र में विराजमान होते हैं, वह क्षेत्र क्या कहलाता है ?

उत्तर—सिद्ध क्षेत्र—सिद्ध शिला, ईषत्प्राग्भारा नाम की पृथ्वी आदि १२ नाम हैं। सिद्ध भगवान इससे भी ऊपर है।

१९ प्र.—सिद्ध-क्षेत्र कैसा है ?

उत्तर—यह पृथ्वी पैंतालीस (४५) लाख योजन की लम्बी-चौड़ी और एक करोड़ बयालीस लाख तीस हजार दो सौ गुण-पचास (१४२३०२४९) योजन से कुछ अधिक परिधि वाली है। वह ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी बहुमध्य देशभाग में आठ योजन जितने क्षेत्र में, आठ योजन मोटी है। इसके बाद थोड़ी २ कम होती हुई सबसे अंतिम छोरों पर मक्खी की पांख से भी पतली है, उस छोर की मोटाई अंगुल के बसन्त्येय भाग जितनी है।

२० प्र.—सिद्ध कहाँ स्थित होते हैं ?

उत्तर—ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के तले से उत्तरेषांगुल से एक योजन पर लोकान्त है। उस योजन का जो ऊपर का कोस है,

सम्यग्ज्ञान

३५ प्र.—ज्ञान के कितने भेद हैं ?

उत्तर—पाँच—१ मतिज्ञान २ श्रुतज्ञान ३ अवधिज्ञान ४ मनःपर्यय ज्ञान और ५ केवलज्ञान ।

३६ प्र.—उपरोक्त पाँच ज्ञान के संक्षिप्त भेद कितने हैं ?

उत्तर—दो—१ प्रत्यक्ष और २ परोक्ष ।

३७ प्र.—प्रत्यक्ष किसे कहते हैं ?

उत्तर—किसी भी अन्य निमित्त की सहायता के बिना स्वतः निजी शक्ति से जानना प्रत्यक्ष कहलाता है । इसके दो भेद हैं—१ इन्द्रिय प्रत्यक्ष और २ अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष ।

३८ प्र.—इन्द्रिय प्रत्यक्ष किसे कहते हैं ?

उत्तर—अन्य की सहायता के बिना स्व इन्द्रिय से जानना "इन्द्रिय प्रत्यक्ष" है ।

३९ प्र.—अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष क्या है ?

उत्तर—इन्द्रियों की सहायता के बिना स्व आत्मा से जानना 'अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष' है ।

४० प्र.—परोक्ष किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो अपने जानने-देखने में नहीं आ सके और दूसरे की सहायता से जाना जा सके ।

४१ प्र.—परोक्ष ज्ञान के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो—१ मतिज्ञान और २ श्रुतज्ञान ।

४२ प्र.—मतिज्ञान का दूसरा नाम क्या है ?

उत्तर—आभिनिवोधिक ज्ञान ।

४३ प्र.—आभिनिवोधिक ज्ञान का क्या अर्थ है ?

८६ प्र.-आवश्यक-व्यतिरिक्त क्या है ?

उत्तर-आवश्यक से भिन्न जितने सम्यक् श्रुत हैं, वे सब आवश्यक-व्यतिरिक्त हैं ।

८७ प्र.-आवश्यक-व्यतिरिक्त के कितने भेद हैं ?

उत्तर-दो भेद हैं-१ कालिक और २ उत्कालिक ।

८८ प्रश्न-कालिक मूत्र किसे कहते हैं ?

उत्तर-अमूक काल में ही पढ़ने योग्य । जो मूत्र दिन और रात्रि के पहले और चौथे प्रहर में ही पड़े जाय वे कालिक मूत्र हैं । जैसे-उत्तराध्ययन, दशाश्रुतस्कंध, बृहत्कल्प, व्यवहार, निशीथ आदि ।

८९ प्र.-उत्कालिक मूत्र किसे कहते हैं ?

उत्तर-काल उपरांत में भी पढ़ने योग्य । जो मूत्र दिन और रात्रि के दूसरे और तीसरे प्रहर में भी पड़े जा सके, उसे ' उत्कालिक मूत्र ' कहते हैं । जैसे दशवैकालिक, औपपातिक, जीवाभिगम, पणवणा (प्रज्ञापना) नंदी, अनुयोगद्वार आदि ।

९० प्र.-अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष के कितने भेद हैं ?

उत्तर-तीन भेद हैं-१ अवधिज्ञान २ मनःपर्यवज्ञान और ३ केवलज्ञान ।

९१ प्र.-अवधिज्ञान क्या है ?

उत्तर-द्रव्य-इन्द्रिय और द्रव्य-मन के निमित्त के बिना केवल आत्मा में स्वी पुद्गल द्रव्य को जानना-अवधिज्ञान है ।

९२ प्र.-अवधिज्ञान के कितने भेद हैं ?

भाव से आते हैं ?

उत्तर-धायोपगमिक भाव से ।

प्रमाण नय निक्षेप और सप्तभंगी

१३३ प्र.-प्रमाण किसे कहते हैं ?

उत्तर-अपना और दूसरे का निश्चय करने वाले सच्चे ज्ञान को 'प्रमाण' कहते हैं । अथवा जो ज्ञान वस्तु के अनेक अंशों को जाने वह प्रमाणज्ञान है ।

१३४ प्र.-क्या ज्ञान ही प्रमाण होता है ?

उत्तर-हां, ज्ञान के सिवाय और कोई इन्द्रिय मनु या इन्द्रिय और विषय का संयोग प्रमाण नहीं है ।

१३५ प्र.-ज्ञान स्वप्रकाश्य है या पर प्रकाश्य ?

उत्तर-ज्ञान स्वप्रकाश्य है, क्योंकि ज्ञान अपने आपको स्वयं ही जानता है, जैसे — दीपक ।

१३६ प्र.-प्रमाण के कितने भेद हैं ?

उत्तर-चार भेद हैं—१ प्रत्यक्ष २ अनुमान ३ आगम और ४ उपमान ।

१३७ प्र.-प्रत्यक्ष किसे कहते हैं ?

उत्तर-जो पदार्थ को स्पष्टता (आकारादि विशिष्टता) से जाने ।

१३८ प्र.-प्रत्यक्ष के कितने भेद हैं ?

उत्तर-दो भेद—१ सांख्यवहारिक प्रत्यक्ष और २ पार-मार्थिक प्रत्यक्ष ।

१४५ प्र.—सकलपारमार्थिक प्रत्यक्ष किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो ज्ञान त्रिकालवर्ती द्रव्य-गुण-पर्यायों को जने यह केवलज्ञान है ।

१४६ प्र.—अनुमान किसे कहते हैं ?

उत्तर—प्रत्यक्ष साधन से अप्रत्यक्ष साध्य के ज्ञान को अनुमान कहते हैं । जैसे धूम को देख कर अग्नि का ज्ञान ।

१४७ प्र.—साध्य का क्या अर्थ है ?

उत्तर—जिसे हम सिद्ध करना चाहते हैं, वह साध्य ब्यवा जो इष्ट हो और जो प्रत्यक्ष, अनुमान आदि प्रमाणाधिष्ठित न हो ।

१४८ प्र.—साधन क्या है ?

उत्तर—जिसके द्वारा साध्य सिद्ध किया जा सके, वह साधन है ।

१४९ प्र.—अनुमान के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो—१ त्वयानुमान और २

१५० प्र.—त्वयानुमान क्या है ?

उत्तर—त्वयं साधन द्वारा साध्य के

ज्ञान है ।

१५१ प्र.—त्वयानुमान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसके द्वारा साध्य के ज्ञान के लिए

को साधन माना जाता है, उसे त्वयानुमान कहते हैं ।

१५२ प्र.—अनुमान प्रमाणाधिष्ठित किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिनके द्वारा साध्य के ज्ञान के लिए

दिन वही दशा होगी । यह पत्तों का आपस में काल्पनिक वार्तालाप असत् की सत् से उपमा है । ४ असत् की असत् से उपमा—अविद्यमान वस्तु की अविद्यमान वस्तु से उपमा देना । जैसे गधे के सींग, आकाश के फूलों सरीखे हैं । गधे के सींग नहीं होते, वैसे ही आकाश में फूल भी नहीं होते । यह असत् से असत् की उपमा है ।

१५७ प्र.—प्रमाण का फल क्या है ?

उत्तर—अज्ञान का दूर होना ।

१५८ प्र.—नय किसे कहते हैं ?

उत्तर—अनंत धर्मात्मक वस्तु के एक धर्म को जानने वाले ज्ञान को नय कहते हैं । अथवा किसी विषय के सापेक्ष निरूपण को नय कहते हैं ।

१५९ प्र.—नय के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद हैं—१ द्रव्यार्थिक और २ पर्यायार्थिक ।

१६० प्र.—द्रव्यार्थिक नय क्या है ?

उत्तर—जो पर्यायों को गौण करके द्रव्य को ही मुख्यतया ग्रहण करे । सामान्य वस्तु को विषय करने वाले नय को—द्रव्यार्थिक नय कहते हैं ।

१६१ प्र.—पर्यायार्थिक किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो द्रव्य को गौण करके पर्यायों को ही मुख्यतया ग्रहण करे उसे पर्यायार्थिक नय कहते हैं ।

१६२ प्र.—द्रव्यार्थिक नय के कितने भेद हैं ?

उत्तर—तीन भेद हैं—१ नैगम २ संग्रह और ३ व्यवहार ।

उत्तर—ऋजु याने सरल अर्थात् जो विचार भूत और भविष्य काल की उपेक्षा कर के वर्तमान पर्याय मात्र को ग्रहण करे, उसे ऋजुसूत्र नय कहते हैं ।

१६८ प्र.—शब्द नय किसे कहते हैं ?

उत्तर—लिंग, कारक, वचन, काल और उपसर्ग वगैरह के भेद से वस्तु को भिन्न पने ग्रहण करे, उसे शब्द नय कहते हैं । जैसे 'दार, भार्या, कलत्र'—ये तीनों शब्द भिन्न २ लिंग के एक ही स्त्री पदार्थ के वाचक हैं, किंतु यह नय स्त्री पदार्थ को तीन रूप से ग्रहण करता है । इसी प्रकार जैसे सुमेरु था, सुमेरु है और सुमेरु होगा । उपरोक्त उदाहरण में शब्द नय भूत, वर्तमान और भविष्यत् काल के भेद से सुमेरु पर्वत में तीन भेद मानता है ।

१६९ प्र.—ममभिरूढ नय किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो पर्याय वाचक शब्दों की व्युत्पत्ति के भेद से अर्थ को भिन्न २ रूप से ग्रहण करे । जैसे—इन्द्र, शक्र, पुरन्दर । इनका एक ही अर्थ होने पर भी यह नय—व्युत्पत्ति अर्थ के भेद से भिन्न २ रूप ही ग्रहण करता है । शब्द नय इन्द्र, शक्र, पुरन्दर इन तीनों शब्दों का एक ही वाच्य मानता है, परन्तु ममभिरूढ नय के मत से इन तीनों के भिन्न २ वाच्य हैं, क्योंकि इन तीनों की प्रवृत्ति के निमित्त भिन्न २ हैं । इन्दन—ऐश्वर्य भोगने ममय इन्द्र, को इन्द्र, शकन—ममर्थ होने की क्रिया में परिणत को शक्र और पुरदारण—नगरों का नाश करने में प्रवृत्त को पुरन्दर कहते हैं ।

१७० प्र.—एवंभूत नय किसे कहते हैं ?

में अपने-अपने धर्मों की अपेक्षा से सत्त्व कहना। यह प्रथम भंग का तात्पर्य है।

१८२ प्र.—स्यान्नास्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर—‘कथंचित् नहीं है’—पर द्रव्यादिकों की अपेक्षा वस्तु का निषेध बतलाने वाला ‘स्यान्नास्ति’ नाम का दूसरा भंग है। जैसे—जीव-द्रव्य में अन्य द्रव्यों के धर्म नहीं हैं इसमें धर्मास्तिकायादि के धर्मवाला जीव-द्रव्य नहीं है। यह दूसरा भंग है।

१८३ प्र.—स्याद् अस्ति नास्ति (तीसरा भंग) क्या है ?

उत्तर—‘कथंचित् है और नहीं भी है’—एक ही समय एक ही वस्तु में अपने द्रव्यादि की अपेक्षा से अस्तित्ता और पर द्रव्यादि की अपेक्षा से नास्तित्ता है। यह ‘स्याद् अस्ति स्य न्नास्ति’ नामक तीसरा भंग कहलाता है।

१८४ प्र.—स्याद् अवक्तव्य नामक चौथे भंग से क्या आशय है

उत्तर—‘कथंचित् कहा नहीं जा सकता’—तीसरे भंग अनुसार एक ही समय में अस्ति और नास्तित्ता होने पर वचन से एक ही साथ दोनों धर्म कहे नहीं जा सकते, इसी वह ‘स्याद् अवक्तव्य’ नाम का चौथा भंग कहा जाता है।

१८५ प्र.—‘स्याद् अस्ति अवक्तव्य’ (पाँचवाँ भंग) कि कहा जाता है ?

उत्तर—‘कथंचित् है पर कहा नहीं जा सकता’—वस्तु अवक्तव्यता के साथ अस्तित्व के भी होने से ‘स्याद् अस्ति अवक्तव्य’ नामका पाँचवाँ भंग कहा जाता है। क्योंकि उस

वाला है क्योंकि पाँच वर्णों के पुद्गलों से बना हुआ है। आत्मा सिद्ध स्वरूप है। निश्चय में ज्ञान प्रधान रहता है।

१६१ प्र.—व्यवहार किसे कहते हैं ?

उत्तर—वस्तु का लोक-सम्मत स्वरूप व्यवहार है। जैसे—कोयल काली है। आत्मा मनुष्य-तिर्यंच रूप है। व्यवहार में क्रिया की प्रधानता रहती है।

निश्चय और व्यवहार एक दूसरे के पूरक हैं।

१६२ प्र.—उपादान कारण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो कारण स्वयं कार्य रूप में परिणत होता है, उसे उपादान कारण कहते हैं। जैसे—मिट्टी, घड़े का उपादान कारण है अथवा दूध, दही का उपादान कारण है।

१६३ प्र.—निमित्त कारण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो कारण कार्य के होने में सहायक हो और कार्य के हो जाने पर अलग हो जाय उसे निमित्त कारण कहते हैं। जैसे—चाक-दण्ड आदि घड़े के निमित्त कारण है।

गुणस्थान स्वरूप

१६४ प्र.—गुणस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जीव के गुण विकास के अनुसार आत्मा की पद-वृद्धि को अथवा मोह और योग के निमित्त से होने वाली मम्यक्ज्ञान दर्शन चारित्र्य आदि आत्मा के गुणों की शुद्धि और अशुद्धि की न्यूनाधिक अवस्था को गुणस्थान कहते हैं।

चारों में पाता है। इसकी स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट ६६ सागरोपम ज्ञाज्ञेरी है। अंतर देशोन अर्द्धपुद्गल परावर्तन का है।

२०६ प्र.—एक जीव को एक भव में यह सम्यक्त्व कितनी बार होता है ?

उत्तर—क्षयोपशम-सम्यक्त्व एक जीव को एक भव में जघन्य १ बार उत्कृष्ट पृथक्त्व हजार बार होता है। अनेक भवाश्रित जघन्य दो बार उत्कृष्ट असंख्य बार होता है।

२१० प्र.—उपशम-सम्यक्त्व की स्थिति और अंतर कितना है ?

उत्तर—उपशम सम्यक्त्व चारों गतियों में आता है और जाता है। स्थिति अंतर्मुहूर्त की है और अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट देशोन अर्द्धपुद्गलपरावर्तन का है।

२११ प्र.—यह सम्यक्त्व जीव को कितनी बार होता है ?

उत्तर—उपशम सम्यक्त्व एक जीव को एक भव में जघन्य एक बार उत्कृष्ट दो बार होता है। अनेक भव के आश्रित जघन्य दो बार उत्कृष्ट पाँच बार होता है।

२१२ प्र.—क्षायिक-सम्यक्त्व जीव को कब आता है ? इसकी स्थिति और अंतर कितना है ?

उत्तर—क्षायिक सम्यक्त्व मनुष्य-गति में आता है और चारों गतियों में पाता है। इसका अंतर नहीं है। स्थिति की आदि है, अंत नहीं। एक बार आने पर फिर नहीं जाता।

२१३ प्र.—चौथे गुणस्थान वाले जीव को क्या लाभ होता है ?

उत्तर—वह मनुष्य या तिर्यंच जीव, नरक, तिर्यंच, भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी इनका आयु-बंध नहीं करता है और न

उत्तर-प्रत्येक (नव) हजार बार आता है ।

२१६ प्र.-प्रमत्त-संयत गुणस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर-अनंतानुबंधी आदि तीन चौक के अनुदय औ संज्वलन चौक के उदय से सर्वविरतिपन को स्वीकार करते हैं अतः 'संयत' कहलाते हैं, किन्तु प्रमाद होने के कारण 'प्रमत्त संयत' है ।

२२० प्र.-इसकी स्थिति कितनी है ?

उत्तर-छठे गुणस्थान की स्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट देशोन पूर्व कोटि की है ।

२२१ प्र.-प्रमत्त-संयत गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का क्षयोपशम होता है ?

उत्तर-छठे गुणस्थान में पाँचवें गुण० की ग्यारह औ प्रत्यास्थानावरण की चार, इन पन्द्रह प्रकृतियों का क्षयोपशम होता है ।

२२२ प्र.-प्रमत्त-संयत गुणस्थान वाला कितने भाग करता है ?

उत्तर-छठे गुण० वाला आगे बढ़ कर जघन्य उसी भाग में और उत्कृष्ट १५ भाग में मोक्ष पाता है ।

२२३ प्र.-अप्रमत्त-संयत किसे कहते हैं ?

उत्तर-संज्वलन और नोकपाय के मंदोदय से प्रमाद ब छोड़ कर स्वाध्यायादि में लीन एवं एकरस ऐसे मुनि अप्रमत्त संयत हैं ।

२२४ प्र.-इसकी कितनी ।

उत्तर—संज्वलन क्रोध, मान, माया का सूक्ष्म उदय रहा उसकी निवृत्ति इस गुणस्थान में होती है। आठवें गुणस्थानवर्ती जीवों के परिणाम लोकाकाश के असंख्यात प्रदेशों के बराबर असंख्यात होते हैं। क्योंकि इसकी स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है और अन्तर्मुहूर्त के असंख्यात समय है। नौवें गुणस्थानवर्ती सब जीवों के परिणाम सदृश ही होते हैं, क्योंकि वहाँ के जीवों की समान शुद्धि है, अतः उनके परिणाम भी एक ही वर्ग के होते हैं। आठवें गुणस्थान में चारित्र-मोहनीय के उपशमन या क्षपण की योग्यता प्राप्त हो जाती है और नौवें गुणस्थान में उपशमन या क्षपण का प्रारम्भ होता है।

२३२ प्र.—नौवें गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का क्षय या उपशम होता है ?

उत्तर—नौवें गुणस्थान में उपरोक्त इक्कीस और क्रमशः संज्वलन क्रोध, मान, माया, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, इस प्रकार कुल २७ प्रकृतियों का क्षय या उपशम होता है।

२३३ प्र.—सूक्ष्म-संपराय गुणस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर—यहाँ सूक्ष्म कपाय (लोभ) का उदय होने से इसे सूक्ष्म-संपराय गुणस्थान कहा जाता है। जैसे धुले हुए कसूमी वस्त्र में अत्यंत सूक्ष्म लालिमा रह जाती है, उसी प्रकार जहाँ सूक्ष्म संज्वलन लोभ रूप राग ही बाकी रहे, ऐसी जीव की अवस्था को सूक्ष्म-संपराय गुणस्थान कहते हैं। दसवें गुणस्थान में उपशमक और क्षपक दोनों प्रकार के जीव होते हैं। उपशमक



उत्तर—इनकी स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की है ।

२३८ प्र.—ग्यारहवें गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का उपशम होता है ?

उत्तर—जो अनन्तानुबन्धी चीक और दर्शन-त्रिक का क्षय करके चारित्र-मोहनीय का उपशम करके ग्यारहवें गुणस्थान का स्पर्श करता है उस जीव के २१ प्रकृतियों का उपशम होता है और जो दर्शन-सप्तक का भी उपशम करता है, उसके २८ प्रकृतियों का उपशम होता है ।

२३९ प्र.—क्षीण-मोहनीय गुणस्थान क्या है ?

उत्तर—इसमें कपायों के सर्वथा क्षय होने से आत्मा मोह से रहित वातराग होती है ।

२४० प्र.—इसमें कितनी प्रकृतियों का क्षय होता है ?

उत्तर—क्षीण-मोहनीय गुणस्थान में पूर्वोक्त २८ प्रकृतियों ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अंतराय कर्म का क्षय होता है ।

२४१ प्र.—सयोगी केवली गुणस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिन्होंने बारहवें गुणस्थान के अंत समय में बाकी रहे हुए तीन घनघाति कर्मों को क्षय करके जिन्होंने लोकालोक प्रकाशक अनंत केवलज्ञान केवलदर्शन प्राप्त किया है और जो योग सद्भिन् हैं, उन अहंन्त भगवान् को सयोगी केवली कहते हैं ।

२४२ प्र.—जीव इस गुणस्थान में कितने समय तक रहता है ?

उत्तर—जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट दर्शन को प्राप्त तक ।

२४३ प्र.—बारहवें गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का उपशम होता है ?

में बंध होना ही नहीं ।

२४७ प्र.—किम-किम गुणस्थान में किम ७ कर्म का उदय होता है ?

उत्तर—पहले से लेकर दसवें गुणस्थान तक आठों कर्मों का, ग्यारहवें बारहवें गुणस्थान में मोहनीय को छोड़ कर सात कर्मों का और तेरहवें चौदहवें गुणस्थान में चार अथवा तीन कर्मों का उदय होता है ।

२४८ प्र.—किम-किम गुणस्थान में किम २ कर्म की उदीरणा होती है ?

उत्तर—पहले, दूसरे, चौथे, पांचवें और छठे गुणस्थान में सात अथवा आठ कर्म की (जब आयु की उदीरणा होती है तब आठ की, नहीं तो सात की । क्योंकि जब वर्तमान भव की आयु आवलिका मात्र शेष बचती है तब आयु की उदीरणा नहीं होती ।) तीसरे में सात कर्मों की, सातवें आठवें नववें में आयु और वेदनीय को छोड़ कर छह कर्मों की, दसवें में आयु, वेदनीय को छोड़ छह की अथवा आयु, वेदनीय और मोहनीय को छोड़ पांच कर्मों की उदीरणा, ग्यारहवें में उक्त (आयु, वेदनीय एवं मोहनीय) के सिवाय पांच की, बारहवें में पांच अथवा दो (नाम और गोत्र) की, तेरहवें में दो (नाम, गोत्र) की अथवा नहीं । चौदहवें गुणस्थान में किसी की भी उदीरणा नहीं होती । उसी कर्म की उदीरणा होती है जो उदयमान हो जो उदयमान नहीं, उसकी उदीरणा भी नहीं होती । उदयमान में से भी उसी की जिसकी स्थिति आवलिका से अधिक हो ।

२७२ प्र.-आठ गुणस्थान किसमें ?

उत्तर-अप्रमादी में (७ से १४ तक)।

२७३ प्र.-नौ गुणस्थान किसमें ?

उत्तर-साधुजी में (६ से १४ तक) ।

२७४ प्र.-दस गुणस्थान किसमें ?

उत्तर-व्रती में (५-१४) ।

२७५ प्र.-ग्यारह गुणस्थान किसमें ?

उत्तर-क्षायिक सम्यक्त्व में (४ से १४ तक) ।

२७६ प्र.-बारह गुणस्थान किसमें ?

उत्तर-सन्नी में (१ से १२ तक) सम्यग्दृष्टि में (१-३ छोड़ कर) ।

२७७ प्र.-तेरह गुणस्थान किसमें ?

उत्तर-एकान्त भवी में (२ से १४ तक), आहारक में (१ से १३ तक), शुक्ल लेदया में ।

२७८ प्र.-चौदह गुणस्थान किसमें ?

उत्तर-भवी में (१ से १४ पूरे), समुच्चय जीव में ।

२७९ प्र.-प्रथम और अंतिम छोड़कर १२ गुणस्थान किसमें होते हैं ?

उत्तर-सयोगी एकान्त भवी में ।

२८० प्र.-दो पहले और दो अंतिम छोड़कर १० गुणस्थान किसमें होते हैं ?

उत्तर-एकान्त सत्री में ।

२८१ प्र.-तीन प्रथम और तीन अंतिम छोड़कर आठ

संघ के प्रकाशन

	मूल्य
१ मोक्षमार्ग ग्रंथ	अप्राप्य
२ भगवती सूत्र भाग १	अप्राप्य
३ भगवती सूत्र भाग २	"
४ भगवती सूत्र भाग ३	"
५ भगवती सूत्र भाग ४	"
६ भगवती सूत्र भाग ५	५-००
७ भगवती सूत्र भाग ६	५-००
८ भगवती सूत्र भाग ७	७-००
९ उत्तराध्ययन सूत्र	५-००
१० उववाइय सुत्त	२-००
११ जैनस्वाध्यायमाला	अप्राप्य
१२ दशवेकालिक सूत्र	२-२५
१३ सिद्धस्तुति	०-७५
१४ स्त्री-प्रधान धर्म	अप्राप्य
१५ सुखविपाक सूत्र	०-२०
१६ कर्म-प्रकृति	०-२०
१७ सामायिक सूत्र	०-१५
१८ सूयगडांगसूत्र	अप्राप्य
१९ विनयचंद चौवीसी	०-४०
२० नन्दी सूत्र	अप्राप्य
२१ आलोचना पंचक	०-२०
२२ धी उपासकदशांग सूत्र	४-००

	मूल्य
४६ अंतकृतयिवेचन	अप्राप्य
४७ तीर्थंकरों का लेखा	"
४४ जीव घटा	०-२
४६ लघुदण्डक	०-४।
५० महादण्डक	०-४।
५१ तीर्थंकर चरित्र भाग १	५-०
५२ तीर्थंकर चरित्र भाग २	१०-०
५३ तीर्थंकर चरित्र भाग ३	६-०
५४ जैन सिद्धांत शोकसंग्रह भाग १, २	अप्राप्य
५५ आत्म-शुद्धि का मूल तत्त्वत्रयी	३-५
५६ समकित के ६७ बोल	०-२
५७ समर्थ समाधान भाग ३	३-५
५८ अंगपविट्टु सुत्ताणि भाग १	१४-

	मूल्य
४६ अंतकृतविवेचन	अप्राप्य
४७ तीर्थंकरों का लेखा	" "
४८ जीव घड़ा	०-२५
४९ लघुदण्डक	०-४०
५० महादण्डक	०-४०
५१ तीर्थंकर चरित्र भाग १	५-००
५२ तीर्थंकर चरित्र भाग २	१०-००
५३ तीर्थंकर चरित्र भाग ३	६-००
५४ जैन सिद्धांत थोकसंग्रह भाग १, २	अप्राप्य
५५ आत्म-शुद्धि का मूल तत्त्वत्रयी	३-५०
५६ समकित के ६७ बोल	०-२०
५७ समर्थ समाधान भाग ३	३-५०
५८ अंगपविट्टु सुत्ताणि भाग १	१४-००

संघ के प्रकाशन

	मूल्य
१ मोक्षमार्ग ग्रंथ	अप्राप्य
२ भगवती सूत्र भाग १	अप्राप्य
३ भगवती सूत्र भाग २	"
४ भगवती सूत्र भाग ३	"
५ भगवती सूत्र भाग ४	"
६ भगवती सूत्र भाग ५	५-००
७ भगवती सूत्र भाग ६	५-००
८ भगवती सूत्र भाग ७	७-००
९ उत्तराध्ययन सूत्र	५-००
१० उववाइय सुत्र	२-००
११ जैनस्वाध्यायमाला	अप्राप्य
१२ दशवेकालिक सूत्र	२-२५
१३ सिद्धस्तुति	०-७५
१४ स्त्री-प्रधान धर्म	अप्राप्य
१५ सुखविपाक सूत्र	०-२०
१६ कर्म-प्रकृति	०-२०
१७ सामायिक सूत्र	०-१५
१८ सूर्यगडांगसूत्र	अप्राप्य
१९ विनयचंद्र चौवीसी	०-४०
२० नन्दी सूत्र	अप्राप्य
२१ आलोचना पंचक	०-२०
२२ श्री उपासकदशांग सूत्र	४-००

मूल्य

४६ अंतकृतविवेचन	अप्राप्य
४७ तीर्थंकरों का लेखा	"
४८ जीव घड़ा	०-२५
४९ लघुदण्डक	०-४०
५० महादण्डक	०-४०
५१ तीर्थंकर चरित्र भाग १	५-००
५२ तीर्थंकर चरित्र भाग २	१०-००
५३ तीर्थंकर चरित्र भाग ३	९-००
५४ जैन सिद्धांत शोकसंग्रह भाग १, २	अप्राप्य
५५ आत्म-शुद्धि का मूल तत्त्वत्रयी	३-५०
५६ समकित के ६७ बोल	०-२०
५७ समर्थ समाधान भाग ३	३-५०
५८ अंगपविट्टु सुत्ताणि भाग १	१४-००

